प्रतिनिधि कहानियाँ

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के 15 मैथिली कथाओं का हिंदी अनुवाद)

प्रतिनिधि कहानियाँ

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के 15 मैथिली कथाओं का हिंदी अनुवाद)

हिंदी अनुवाद

पल्लवी मण्डल

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

PRATINIDHI KAHANIYAN

Selected Stories of Jagdish Prasad Mandal
Hindi Translation: Ms. Pallavi Mandal

This volume features fifteen representative short stories by eminent Maithili author Shri Jagdish Prasad Mandal, translated into Hindi with literary precision and cultural sensitivity. The translations retain Shri Mandal's narrative style, thematic depth, and socio-cultural essence, offering readers an authentic glimpse into his creative world.

ISBN: 978-93-48865-97-7
दाम: 290/- (भा.रु.)
स्वत्वाधिकार: © प्रकाशक
प्रथम संस्करण: 2025

प्रकाशक: पल्लवी प्रकाशन
तुलसी भवन, नेहरू मार्ग, वार्ड नं.: 06, निर्मली
जिला- सुपौल, बिहार: 847452
मुद्रक: पल्लवी प्रकाशन (मानव आर्ट)

वेबसाइट: http://pallavipublication.blogspot.com
ई-मेल: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
मोबाइल: +91 62006 35563; +91 99316 54742

फोण्ट सोर्स: https://fonts.google.com/,
https://github.com/virtualvinodh/aksharamukha-fonts
आवरण चित्र: सुश्री तुलसी कुमारी
अक्षर संयोजन: डॉ. उमेश मण्डल

इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। स्वत्वाधिकारी के लिखित अनुमति के बिना पुस्तक की किसी अंश की छाया प्रति एवम् रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा यॉंत्रिक, किसी माध्यम से या ज्ञान के संग्रहण व पुनर्प्रयोग प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

समर्पण

मिथिला के वृंदावन से लेकर बालू के टीले पर बैठा फुलवारी
लगानेवाला नव प्रभात के पुकारनेवाले
के साथ।

अनुक्रमः

सत्यमेव जयते

दो पाटन के बीच

दूरदृष्टि और दिव्यदृष्टि

झूठ की शव–परीक्षा

प्रतिस्पर्द्धा

शिष्टाचार

जमुनिया

गाँव भगा दिया

आत्माराम

अठहत्तरवाँ स्वतंत्रता दिवस

पूर्ण-अपूर्ण

कथाकार का दुर्दिन

मरनी

बिसाँढ़

बेटी का पैरुख

आमुख

कार्तिक की अमावस्या। धूप ऐसी मानो जेठ की तपिश उतर आई हो, थी, सबका मन उखड़ा-उखड़ा!

❑

सत्यमेव जयते

☰

आज तेरह अगस्त है। जगरनाथपुर गाँव में इस वर्ष जनवरी से ही प्लस-टू की पढ़ाई शुरू हुई। विद्यालय प्रांगण में उन्यासीवाँ स्वतंत्रता दिवस धूमधाम से मनाने का विचार प्रधानाचार्य गोविन्द बाबू ने किया। इसका कारण था, गोविन्द बाबू स्वयं स्वतंत्रता सेनानी के पुत्र थे।

प्लस-टू की पढ़ाई शुरू होने के बाद ही गोविन्द बाबू प्रधानाचार्य बनकर जगरनाथपुर आए। इससे पूर्व वे एक उच्च विद्यालय में प्रधानाध्यापक थे, परंतु इस बार पदोन्नति पाकर उन्हें जगरनाथपुर प्लस-टू उच्च विद्यालय में भेजा गया।

परसों पन्द्रह अगस्त है। विद्यालय के सभी तीस शिक्षक और लगभग पाँच सौ छात्र बैठक में एकत्र हुए। बैठक में गोविन्द बाबू ने प्रस्ताव रखा कि भोर में सभी शिक्षक और छात्र तिरंगा लेकर गाँव की प्रभातफेरी में भाग लेंगे, कार्यक्रम आठ बजे तक चलेगा। इसके बाद विद्यालय प्रांगण में सब एकत्र होंगे और प्रसाद का वितरण होगा। फिर सब अपने-अपने घर जाएँगे, स्नान-भोजन करेंगे और पुनः विद्यालय में उपस्थित होकर दस बजे से स्वतंत्रता प्राप्ति के इतिहास पर संगोष्ठी करेंगे। इसके पश्चात सांस्कृतिक कार्यक्रम होगा, जो शाम पाँच बजे तक चलेगा।

भाषण में सभी शिक्षक वक्ता होंगे और उनके साथ दस ऐसे छात्र भी बोलेंगे जिनको विद्यालय का श्रेष्ठ छात्र माना जाता है। उन्हीं में से एक नाम रमणकुमार का भी था।

रमणकुमार ग्यारहवीं कक्षा का विद्यार्थी था और अपने वर्ग में हमेशा प्रथम

आता था। यह केवल इस बार की उपलब्धि नहीं थी बल्कि आठवीं से ही वह लगातार प्रथम स्थान प्राप्त करता चला आ रहा था। वह विज्ञान का छात्र था, जितना कुशाग्र बुद्धि उतना ही परिश्रमी भी।

हालाँकि गोविन्द बाबू ने भाषण के विषयों का चयन नहीं किया था, उन्होंने इतना अवश्य कहा था कि भाषणों का क्रम ऐसा न हो कि सब एक ही बात दोहराएँ। प्रत्येक भाषण में कुछ न कुछ नवीनता अवश्य होनी चाहिए।

अब तक रमणकुमार कभी किसी सार्वजनिक मंच पर नहीं बोला था, इसलिए अपना नाम सुनते ही वह घबरा गया। घर पहुँचकर उसने अपने चाचा मनोज और पिता रामधन से कहा- “परसों स्कूल में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर भाषण का कार्यक्रम है। उसमें मुझे भी बोलना है। आज तक मैं किसी सार्वजनिक मंच पर नहीं बोला हूँ, इसलिए मन घबरा रहा है। ऊपर से हेडमास्टर साहब ने कह दिया है कि कोई वक्ता दूसरे का विषय नहीं दोहराएगा। हर वक्तव्य में कुछ न कुछ नया होना चाहिए।”

रामधन, यानी रमणकुमार के पिता, परिवार के मुखिया थे पर उनका जीवन खेती-बाड़ी में ही बीता। पिता की मृत्यु के बाद से ही उन्होंने खेती संभाली और उसमें निपुण हो गए। उनके साथ इतनी ईमानदारी भी थी कि अन्य परिवारों की तरह दोनों भाइयों के बीच कभी कोई विवाद नहीं हुआ। भाइयों में रामधन बड़े थे और मनोज छोटे।

मनोज समाजप्रिय व्यक्ति थे। बहुत पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई थी, मात्र मैट्रिक तक पढ़े थे, पर जितने ईमानदार समाजसेवक थे उतने ही प्रभावी वक्ता भी। उनमें एक और विशेष गुण था कि वे प्रतिदिन चार घंटे शारीरिक श्रम और दो घंटे बौद्धिक श्रम करते थे, जिससे इतना अर्जन हो जाता कि अपने परिवार अर्थात पत्नी और दो बच्चों का पालन-पोषण ठीक प्रकार से हो सके। उनका यह नियम था कि आज का काम आज ही निपटाना है। जीवन में संयोग और कुसंयोग तो सबके साथ होते रहते हैं।

रमणकुमार की बात सुनकर रामधन चुप रहे, लेकिन मनोज ने उससे पूछा- “बेटा, तुम्हारा अपना क्या विचार है?”

जैसे कोई बच्चा अपने माता-पिता से निष्कपट होकर बोलता है, वैसे ही रमणकुमार बोला- “चाचाजी, आज़ादी के आन्दोलन का पूरा इतिहास तो मैंने नहीं पढ़ा है, लेकिन मैं अवश्य ऐसा विषय चुन सकता हूँ जिस पर अन्य वक्ता न बोलें।”

यह सुनकर मनोज सोचने लगे कि ऐसा कौन-सा विषय हो सकता है। अचानक उनके मन में आया कि क्यों न देश के प्रतीक चिन्ह और उस पर अंकित सत्यमेव जयते के बारे में बोलने को कहा जाए।

उन्होंने रमण से पूछा- “बेटा, वक्ताओं को कितना समय मिलेगा?”

रमण ने उत्तर दिया- “छात्रों को बीस मिनट और शिक्षकों को पच्चीस मिनट।”

यह सुनकर मनोज ने सोचा कि यदि आधे घंटे का विषय समझा दिया जाए तो काम चल जाएगा। बच्चा है, कुछ बातें भूल भी जाए तो भी बीस मिनट तो बोल ही सकेगा। उन्होंने कहा- “बेटा, अच्छा होगा कि तुम कागज़ पर लिख लो। जो-जो बातें कहनी हैं, पहले उन्हें अच्छे से समझ लो, फिर लिख लो और बार-बार पढ़ो।”

यह सुनकर रमणकुमार को संतोष हुआ। उसे लगा कि जब आधे घंटे का भाषण तैयार हो जाएगा, तो कुछ बातें भूल भी जाए तो बीस मिनट तो अवश्य बोल सकेगा।

रामधन भी पास बैठे थे पर मौन साधे हुए। रमण कागज़-कलम लेकर तैयार हुआ। मनोज बोले- “बेटा, हमारे देश का जो प्रतीक चिन्ह ‘सत्यमेव जयते’ है, पहले उसे सुन लो और फिर लिख लेना। ‘सत्यमेव जयते’ हमारे देश का आदर्श वाक्य है, जिसका अर्थ है सत्य की विजय। इसे राष्ट्रपटल पर लाने में पंडित मदन मोहन मालवीय जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

‘सत्यमेव जयते’ मूलतः मुण्डक उपनिषद का श्लोक है। मुण्डक उपनिषद ऋग्वेद का अंग है, जिसमें कहा गया है:

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमन्त्य ऋषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

इसका अर्थ है कि सत्य और असत्य भारतीय सभ्यता के आरंभ से ही धर्म और दर्शन के केंद्र रहे हैं। रामायण में लंका के राजा रावण पर राम की विजय को असत्य पर सत्य की विजय कहा गया है। महाभारत में पाँच पांडवों ने सौ कौरवों को, जिनके पास अठारह अक्षौहिणी सेना थी, परास्त किया। इसे भी सत्य की विजय माना जाता है।

गांधीजी ने कहा है कि 'सत्य' अत्यंत सात्त्विक किंतु जटिल शब्द है। ढाई अक्षरों का यह शब्द 'सत्य' उतना ही सरल है जितना 'प्रेम', पर इस मार्ग पर चलना कठिन है। उनका कहना था कि सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। सत्य का अनुभव यदि ज्ञानयोग है तो उसे जीवन में उतारना कर्मयोग है और अंततः सत्य रूपी सागर में डुबकी लगाकर उसका रसास्वादन करना भक्तियोग है।

भारतीय साहित्य, फिल्मों और लोक परंपराओं में भी सदा से सत्य की विजय की घोषणा होती रही है और आज भी होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो यह वाक्य केवल नैतिक आदर्श नहीं है, बल्कि समाज की संरचना, सत्ता-संबंध, संघर्ष और विमर्श के गहरे अर्थ भी प्रकट करता है।"

मनोज चाचा बोलते रहे और रमण ध्यान से सुनता रहा। वह सोच रहा था कि पहले सब सुन लूँ, फिर एक-एक विचार को लिख लूँ और बार-बार पढ़कर याद कर लूँ। तभी उसने कहा- "चाचाजी, ज़रा धीरे-धीरे समझाइए।"

मनोज ने सोचा कि जब रमण मंच पर बोले तो श्रोता महसूस करें कि उसने सचमुच अच्छी तैयारी की है। वे बोले- "'सत्यमेव जयते' का अर्थ है सत्य की अंतिम विजय, लेकिन जब हम इसे समाज की दृष्टि से देखते हैं तो यह केवल नैतिक आदर्श नहीं रह जाता। यह समाज की संरचना, सत्ता-संबंध और संघर्ष की गहरी परतों को भी उजागर करता है।"

बीच में ही पुनःरमण बोला- "चाचाजी, ज़रा और साफ़ कहिए।"

मनोज ने विचारों को सूत्रबद्ध कर कहा- "बेटा, सत्य को किसी निश्चित, शुद्ध या सार्वभौमिक तत्व के रूप में नहीं माना जा सकता। सत्य समाज द्वारा निरंतर गढ़ा जाता है। उसे सत्ता, वर्ग, जाति, लिंग, धर्म और संस्कृति आकार देते

हैं। फ्रांसीसी विचारक 'मिशेल फूको' ने कहा है कि 'सत्य कभी निष्पक्ष और सार्वभौमिक रूप में मौजूद नहीं होता', बल्कि यह सत्ता-संरचना का उत्पाद होता है।”

रमण बोला- “चाचाजी, थोड़ा और सरल करके कहिए।”

मनोज ने कहा- “जो सत्ता में होता है वह अपने अनुकूल सत्य गढ़ता है और उस सत्य को प्रचार माध्यमों, यानी मीडिया के द्वारा फैलाता है। जो कोई उसका विरोध करता है उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती हैं और अपने गढ़े हुए सत्य के प्रचार-प्रसार में पूरी ताक़त झोंक दी जाती है।”

रमण बोल उठा- “तो फिर...!”

मनोज बोले- “बेटा। हमारे समाज में वर्गीय, जातीय और लैंगिक असमानता किस रूप में बनी हुई है, यह पूरे देश के स्तर पर भले न दिखे, लेकिन अपने गाँव और समाज में तो हर कोई देखता है। सत्य की परिभाषा अब तक उच्च वर्ग की दृष्टि से ही तय होती रही है। दलित, महिलाएँ, आदिवासी, अल्पसंख्यक और गरीब इन सबके जीवन का सत्य दबा दिया गया। वे विमर्श की परिधि से बाहर रहें और आज भी बाहर हैं। ऐसे में ‘सत्यमेव जयते’ को केवल औपचारिक प्रतीक मानना कैसे न्यायसंगत हो सकता है? प्रश्न यह है कि किसका सत्य विजयी होता है।”

रमण भी मन ही मन सोच रहा था पर बोला- “फिर?”

मनोज ने स्पष्ट किया- “जब किसी देश या समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और समान भागीदारी सत्ता में मिलेगी तभी उसका समुचित विकास होगा, सामाजिक रूप से भी और आर्थिक-बौद्धिक रूप से भी। यदि ऐसा नहीं होगा तो समाज और देश के लोगों के बीच विभाजन की रेखा बनी ही रहेगी। इसलिए जब तक सत्ता में सबकी भागीदारी नहीं होगी तब तक शासन का स्वरूप विदेशी या देशी, दोनों में कोई अंतर नहीं रहेगा।”

गहरी साँस छोड़ते हुए रमण बोला- “चाचाजी, परसों ही तो कार्यक्रम है। मध्य में कल पूरा दिन है। आज यहीं तक रहने दीजिए। मैं भी सोचूँगा और जो बातें समझ में नहीं आएँगी, उन्हें पूछ लूँगा। आगे की बातें फिर आपसे आकर

समझ लूँगा।”

सुबह आठ बजे जब गाँव में हलचल शुरू हुई तो जैसे रमण ने मन ही मन आगे की जानकारी लेने का निश्चय किया, वैसे ही मनोज ने भी आगे समझाने का मन बना लिया।

रमण आकर बोला- “चाचाजी, आगे की जानकारी...”

मनोज प्रसन्न हुए और बोले- “बेटा, भारतीय चिंतनधारा में सत्य को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। उपनिषद कहते हैं कि सत्य केवल वाक्य या व्यवहार नहीं, बल्कि परमात्मा और ब्रह्म का पर्याय है। तैत्तिरीय उपनिषद कहता है, ‘सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म।’ यानी सत्य, ज्ञान और अनंतता मिलकर ब्रह्म की अनुभूति कराते हैं। यही कहा गया है कि केवल ब्रह्मसत्ता, केवल ईश्वरीय तत्व, जो सत्य के रूप में व्याप्त है, वही अंततः विजयी होता है। वे ऋषि, जिन्होंने अपनी सभी कामनाओं का त्याग कर दिया है और उस मार्ग पर अग्रसर हैं जहाँ परम सत्य निवास करता है, वही इसका अनुभव कर सकते हैं।”

रमण पूरी तरह नहीं समझ पाया और बोला- “चाचाजी, समझ नहीं पा रहा...।”

मनोज ने गीता का उदाहरण दिया- “बेटा, भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं, ‘सत्यं शमः दमः तपः शौचम्।’ इसका अर्थ है सत्य, शांति, आत्मसंयम, तप और पवित्रता, ये सब मनुष्य की आत्मोन्नति के मूल गुण हैं। इसका आध्यात्मिक आशय यह है कि यदि कोई आत्म-विकास करना चाहता है तो उसके विचार, वाणी और कर्म में सत्य का समावेश आवश्यक है।”

गहरी साँस छोड़ते हुए रमण बोला- “अब समझ गया, चाचा।”

मनोज ने और गहराई से समझाने के लिए कहा- “पतंजलि योगसूत्र में कहा गया है, ‘सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।’ इसका अर्थ है कि जब कोई योगी सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके द्वारा बोले गए प्रत्येक वचन सत्य हो जाते हैं। अर्थात सत्य आध्यात्मिक ऊर्जा है, जिसे ध्यान के अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए 'सत्यमेव जयते' केवल एक नारा नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का निष्कर्ष भी है।”

मनोज की बात सुनकर रमण भीतर से प्रसन्न हो उठा और बोला- “चाचाजी, अब तो मैं निश्चिंत होकर बीस मिनट नहीं बल्कि पच्चीस मिनट भी बोल सकता हूँ।”

मनोज मुस्कराए और बोले- “बेटा, चाहे कोई भी सार्वजनिक मंच क्यों न हो, विषय की सच्चाई पर टिककर बोलो। क्योंकि जब वाणी सत्य से जुड़ती है तो बोलने का ढंग चाहे जैसा भी हो, वक्तव्य प्रभावशाली बन ही जाता है।” ❑

दो पाटन के बीच

☰

अभी किरण फूटी भी नहीं थी कि धीरेन्द्र जी काफ़ी तेजी से घर पर पहुँचे। समय सुहावना है। एक तो फाल्गुन का अंतिम दौर, उस पर पिछले साल की तरह इस साल ओस भी नहीं गिर रहा है। पूर्वी हवा बह रही है, चुकी उसकी गति धीमी है; सुखद लग रही है।

मैं अभी आधा घंटा पहले टहलने, यानी भोर की ताज़ा हवा लेने घर से निकला था। रास्ता एकदम साफ-सुथरा है। तीन वर्ष पहले एन.एच. से निकली गाँव की पक्की सड़क बनने के बाद, गाँव की सड़क के दोनों किनारों की खाइयाँ, दक्षिण की ओर वाली और उत्तर की ओर वाली भी, जहाँ पिछली बाढ़ में तालाब बन गया था, वहाँ मिट्टी भरकर पक्की सड़क बना दी गई है। इसलिए अब रास्ते पर कहीं भी कीचड़ नहीं है। तीन साल पहले तक उस जगह, जहाँ तालाब सा बन जाता था, बरसात का पानी इतना जमा हो जाता कि अगहन-पूस तक वह भरा रहता। हालाँकि, इससे रास्ता बंद नहीं होता था, क्योंकि खेत के किनारे-किनारे से लोग राह पार कर ही लेते थे।

गाँव में इंजन वाली गाड़ियाँ गिनी-चुनी हैं, इसलिए सड़क पर पानी रहते हुए भी गाड़ियां चलने में कोई खास बाधा नहीं आती थी। जब टमटम या रिक्शा उस हिस्से को पार करने लगता, तो यात्री उतरकर पैदल खेत के किनारे से निकल जाते और रिक्शा या टमटम वहां से खाली ही पार हो जाता। जिस खेत के किनारे से रास्ता बनता था, उसके मालिक चाहे कितनी ही मनाही क्यूं ना करें, चलने

वाले नहीं ही मानते थे। यह एक बार का नहीं, हर साल का सिलसिला था, लेकिन यह स्थिति तीन साल पहले तक की है।

मैं घर पर नहीं था। धीरेन्द्र जी पहुँचते ही खोजने लगे, तो पता चला कि मैं दक्षिण की ओर टहलने गया हूँ। अपने छोटे बेटे को साथ लेकर धीरेन्द्र जी दक्षिणी सड़क पर मुझे खोजने निकले। मैं भी टहल कर लौट ही रहा था कि दूर से ही धीरेन्द्र जी को देखा। थोड़ी दूरी थी, लेकिन चेहरे से पहचान गया। मन में उठी जिज्ञासा कि सुबह-सुबह धीरेन्द्र जी क्यों आए हैं? पहचान तो है, लेकिन और कोई विशेष संबंध नहीं। मैं कदम बढ़ा रहा था और धीरेन्द्र जी भी। पास आते ही मैंने कहा, नमस्कार, धीरेन्द्र भाई।

जैसे मैंने नमस्कार किया, वैसे ही उन्होंने भी उत्तर देते हुए, नमस्कार कहा, आपसे ही मिलने आया हूँ।

मैंने प्रशंसा के स्वर में कहा, मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। चलिए, घर पर बैठकर विस्तार से बात करेंगे।

आगे-आगे धीरेन्द्र जी और पीछे-पीछे मैं, हम दोनों ही चल पड़े। इस बीच रास्ते के किनारे जो एक तालाब है जिसके चारों ओर लोगों ने घर बना लिया, मेरा घर भी इसी तालाब के पूरब के किनारे पर है, उसे दिखाते हुए मैंने कहा, धीरेन्द्र जी, आपके गाँव में भी ऐसा तालाब है? लेकिन यह तालाब गाँव वालों ने नहीं दैत्यों ने खोदी है।

हँसते हुए धीरेन्द्र जी बोले, दैत्य या दानव कहाँ खत्म होते हैं, वे तो हमारे और आपके तरह ही गाँव-गाँव में रहते हैं।

मैंने अपने विचार से बात कही, वैसे ही धीरेन्द्र जी ने भी अपने विचार से उत्तर दिया, जिससे मैं असमंजस में पड़ गया कि धीरेन्द्र जी ने आखिर क्या कहा। फिर भी मैंने चुप्पी साधे रखी। इस बीच हम अपने घर के पास पहुँच गए। दरवाज़े पर पहुँचते ही मैंने धीरेन्द्र जी से कहा- “भाई, गरीब आदमी का घर है, इसलिए मान-अपमान की परवाह मत कीजिएगा। यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे व्यक्ति का आगमन हुआ है।”

धीरेन्द्र जी ने सीधी बात कही- “गोपीकृष्ण, भाग्य-सौभाग्य जैसी कोई

चीज़ नहीं होती, सब मनुष्य की अपनी लीला है।”

मैंने कहा- “पहले कुछ नाश्ता कर लीजिए, फिर बैठकर बातें करेंगे।”

धीरेन्द्र जी बोले- “मैं सुबह नाश्ता नहीं करता। एक बार दिन में और एक बार रात में ही खाता हूँ। इसलिए नाश्ता नहीं करूंगा, बस चाय पियूंगा।”

मैंने आग्रह करते हुए कहा- “आप तो कभी आते नहीं, आज आए भी हैं तो कह रहे हैं कि नाश्ता नहीं करूंगा।”

धीरेन्द्र जी गंभीर होकर बोले- “गोपीकृष्ण, न तो नौकरी करता हूँ कि मोटी-मोटी आमदनी हो और न ही माता-पिता का पेंशन है कि उनसे मांग लूँ। इसलिए अपनी आमदनी के अनुसार जीवन जीता हूँ, जिससे आत्मसंतोष भी मिलता है।”

धीरेन्द्र जी के विचारों को सुनकर मन मान गया कि सचमुच उनका दृष्टिकोण उच्च कोटि का है। इसी बीच बिटिया कुन्ती चाय लेकर दरवाज़े पर आ गई। थाली से एक कप चाय उठाकर मैंने धीरेन्द्र जी के हाथ में देते हुए पूछा- “पानी भी पिएंगे?”

धीरेन्द्र जी बोले- “प्यास तो नहीं लगी है, फिर भी दो घूँट पी लूंगा।”

जैसे ही उन्होंने कहा, कुन्ती ने थाली को चौकी पर रखा और आँगन में जाकर एक लोटे में पानी और एक ग्लास लेकर दरवाज़े पर आई। लोटे से ग्लास में पानी लेकर दिया। पानी पीकर धीरेन्द्र जी बोले- “जैसा पानी आपके कुएँ का है, वैसा ही हमारा भी है।”

ग्लास को चौकी पर रख मैंने और धीरेन्द्र जी ने अपना-अपना चाय पीना शुरू किया। दो-तीन घूँट चाय पीने के बाद धीरेन्द्र जी बोले- “गोपीकृष्ण, मैं यहाँ क्यों आया हूँ, यह तो आपने पूछा ही नहीं।”

अपना बचाव करते हुए मैंने कहा- “धीरेन्द्र जी, यह भी पूछना होता है! हाई स्कूल में हम दोनों साथ-साथ पढ़े हैं, मित्र हैं। आप मित्र के यहाँ आए हैं, तो भला यह कैसे पूछूं कि किसलिए आए हैं?”

इस बीच दोनों ने चाय खत्म कर कप को थाली में रखा। मैंने पान का

सामान निकालकर पान लगाने का उपक्रम शुरू किया ही था कि धीरेन्द्र जी बोले- “गोपीकृष्ण, मैं पान नहीं खाता, आप ही खाइए।”

मेरा आश्चर्य स्वाभाविक था। मैंने कहा- “धीरेन्द्र जी, हमारे यहाँ, यानी मिथिला में, पान-मखाना संस्कृति से जुड़ा है, फिर इसका परित्याग क्यों कर रहे हैं?”

निर्विकार भाव से धीरेन्द्र जी बोले- “दाँत खराब हो जाने के कारण पान नहीं खाता हूँ। आपने जो संस्कृति का विचार उठाया, वह पान या मखाना खाने से नहीं आता। संस्कृति तो जीवन से जुड़ा वह आभूषण है, जो जीवन में चार चाँद लगाता है। इस पर भी ध्यान देना चाहिए।”

मैंने पूछा- “वह कैसे, धीरेन्द्र जी?”

धीरेन्द्र जी बोले- “गाँव में एक कहावत है कि "हल्की मिट्टी बिल्ली खोदती है"। छोटे-छोटे विचार को बड़े विचार की भूख मिटाने से कोई लाभ नहीं होता। मिथिला की संस्कृति विश्व-बन्धुत्व की संस्कृति है, लेकिन आजकल हमने बहुत-सी चीज़ें खोद-खोदकर उसकी असलियत बिगाड़ दी है और बच्चों की तरह केवल 'संस्कृति-संस्कृति' की रट लगाते रहते हैं। इससे होगा क्या?”

मैंने पान लगाकर खाया और धीरेन्द्र जी को दो इलायची दी। इलायची मुँह में लेते ही धीरेन्द्र जी बोले- “आज आपके गाँव में, यानी बँसबिट्टी में, आमसभा करने का विचार है..."

अब तक मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं थी। धीरेन्द्र जी के मन में यह विचार अचानक आया या किसी ने उन्हें बताया, यह भी मुझे नहीं मालूम था। इसलिए मैंने बस इतना ही कहा- “आप जो कार्य देंगे, उसका वहन मैं करूंगा, यही न?”

धीरेन्द्र जी बोले- “गोपीकृष्ण, हमारे यहाँ का जनमानस सोया हुआ है। वह अपनी नींद में आनंद ले रहा है और जो लुटेरा वर्ग है, वह भी बकरी के बच्चे की तरह संभल-संभल के उन्हें सुला रहा है।”

धीरेन्द्र जी का विचार पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो सका, इसलिए मैंने पूछा- “वह कैसे, धीरेन्द्र जी?”

धीरेन्द्र जी बोले- "एक तो अतीत का हवाला लोग स्वयं लेते हैं और उस पर लुटेरा वर्ग के चालाक लोग भी इस तरह सहमति जताते हैं कि वर्तमान पर नज़र ही नहीं जाने देते। यह बात सही है कि अतीत की जानकारी सबको होनी चाहिए, लेकिन अतीत को ही सौ प्रतिशत सही मानकर चलना, जीवन के साथ धोखा करना है।"

धीरेन्द्र जी की बात अब भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुई, तो मैंने कहा- "धीरेन्द्र जी, ज़रा साफ़-साफ़ बताइए।"

मेरी बात सुनकर मन ही मन सोचते हुए धीरेन्द्र जी बोले- "गोपीकृष्ण, समय की तरह जीवन भी तीन कालों में बँटा हुआ है। भूतकाल वह है जो बीत चुका, जिसे हम अतीत कहते हैं। वर्तमान काल वह है जिसमें हम जी रहे हैं। और जो आगे आने वाला है, वह है भविष्य काल, यानी वैसा जीवन जो हम अपने लिए देखना चाहते हैं।"

व्याकरण में भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल तो पढ़ा ही था, लेकिन उसे केवल समय के हिसाब से समझा था, जीवन के हिसाब से कभी नहीं माना था। मेरी नज़र अब उस ओर गई। मैंने कहा- "धीरेन्द्र जी, ज़रा और स्पष्ट करके बताइए।"

धीरेन्द्र जी बोले- "हमारे समाज में, यानी हमारे यहाँ के लोगों की सोच में, जैसे महाभारत की कथा-परंपरा चली आ रही है, वैसे ही रामायण की भी है। लोग इन कथाओं का अनुकरण अपने जीवन में करते हैं और करना भी चाहते हैं। लेकिन जैसे रामायण बीते युग की कथा है, वैसे ही महाभारत की कथा भी है। ये हजारों वर्ष पहले के जीवन की कहानियाँ हैं। दिन-ब-दिन, मिनट-दर-मिनट, समय अपनी गति से आगे बढ़ रहा है। आज का समय जिस गति से चल रहा है, उसी के अनुरूप आज का जीवन होना चाहिए, जो नहीं हो रहा है। लोगों की सोच ऐसी बन गई है कि या तो वे अतीत में खुद को रखे रहना चाहते हैं या फिर भविष्य की कल्पनाएँ बुनने लगते हैं। अब अधिक समय नहीं है कि मैं और बातें कहूँ। अभी जिस काम के लिए आया हूँ, पहले वह काम सफलता से पूरा कर लें, फिर आगे बातचीत होती रहेगी।"

धीरेन्द्र जी की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि इतने में दुनियालाल आ पहुँचे। दुनियालाल मेरे पड़ोसी हैं। बी.ए. पास हैं। उन्हें आते देखते ही मैंने कहा- “दुनियालाल, धीरेन्द्र जी आज हमारे गाँव में आमसभा करेंगे, इसलिए आपको इनकी मदद करनी पड़ेगी।”

दुनियालाल बोले- “गोपी भैया, आप जो कहेंगे वह करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन पहले इनसे मेरा परिचय करा दीजिए।”

दुनियालाल की बात सुनकर मैंने कहा- “दुनियालाल, धीरेन्द्र जी मेरे हाई स्कूल के सहपाठी हैं। हाई स्कूल के पश्चात आज पंद्रह साल बाद हमारी मुलाकात हुई है, इसलिए इन पंद्रह वर्षों के बीच की बातें धीरेन्द्र जी स्वयं बताएंगे। लेकिन हाई स्कूल में जितने दिन हम साथ रहें, उसकी बात मैं कह देता हूँ।”

दुनियालाल मेरी बात गंभीरता से सुनते हुए धीरेन्द्र जी के चेहरे पर नज़र डालने लगा। धीरेन्द्र जी भी उनकी ओर देखने लगे। मैंने कहा- “दुनियालाल, हम दोनों एक ही हाई स्कूल में पढ़ते थे। धीरेन्द्रजी विज्ञान के विद्यार्थी थे और मैं कला का। जब कभी कोई शिक्षक अनुपस्थित रहते थे, तब धीरेन्द्रजी ही कक्षा लेते थे। जैसे शिक्षक पढ़ाते थे, वैसे ही धीरेन्द्र जी भी पढ़ाते थे।”

दुनियालाल बोले- “फिर तो धीरेन्द्र जी अजीब किस्म के व्यक्ति हैं।”

मैंने कहा- “मैट्रिक बोर्ड परीक्षा में धीरेन्द्र जी ने अच्छा स्थान प्राप्त किया। आगे की बातें धीरेन्द्र जी खुद बताएंगे।”

मेरी ओर से नज़र हटाकर दुनियालाल ने धीरेन्द्र जी की ओर देखा। धीरेन्द्र जी बोले- “मैट्रिक करने के बाद एल.एस. कॉलेज में नाम लिखवाया। उस समय मिथिला विश्वविद्यालय नहीं बना था, बस बनने की चर्चा चल रही थी। इंटर साइंस में प्रथम श्रेणी, प्रथम स्थान प्राप्त किया। भौतिकी में ऑनर्स लिया। बी.एस-सी. में भी ऑनर्स के साथ प्रथम स्थान मिला और एम.एस-सी. में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया।”

बीच में दुनियालाल बोले- “वाह, वाह!”

धीरेन्द्र जी ने आगे कहा- “एम.एस-सी. करने के कुछ ही दिनों बाद सरकारी संस्थान "इसरो" में वैज्ञानिक के रूप में नियुक्ति हुई। छह महीने जब

वहाँ काम किया, तब संस्थान ने पागल घोषित करके हटा दिया। वहाँ से लौट आया हूं।"

दुनियालाल बोले- "पागल कहकर हटा दिया, तो आपने मुकदमा क्यों नहीं किया?"

धीरेन्द्र जी ने कहा- "दुनिया में पागल कौन नहीं है। बेवजह केस-मुकदमे के झंझट में क्यों पड़ता। वहाँ से आने के बाद दरभंगा कॉलेज के भौतिकी विभाग में नौकरी मिली। वहाँ भी एक साल काम करने के बाद पागल कहकर हटा दिया।"

दुनियालाल ने पूछा- "अब क्या करते हैं?"

धीरेन्द्रजी बोले- "गाँव में ही रहता हूँ। माता-पिता भी वृद्ध हो गए हैं। भाइयों में अकेला हूँ। पत्नी है। एक बेटा है। अब नौकरी-चाकरी के चक्कर में नहीं जाऊँगा, समाज सेवा करूँगा।"

दुनियालाल ने पूछा- "समाज सेवा में मन लगेगा?"

धीरेन्द्र जी बोले- "मन क्यों नहीं लगेगा। समाज सेवा में उनका मन नहीं लगेगा, जिन्हें किसी मुद्दे से वास्ता नहीं है, लेकिन मेरी आँखों के सामने में मुद्दा है। मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ कि समाज इतनी गहरी नींद में है कि अपने जीवन का अच्छा-बुरा खुद नहीं समझ पा रहा है। वही अच्छा-बुरा समझाना; मेरी सेवा होगी। इसी विचार से कदम बढ़ाया है।"

धीरेन्द्र जी के विचार को दुनियालाल ने कितना समझा, यह तो दुनियालाल ही जाने, लेकिन मेरे मन में यह साफ हो गया कि जिस उद्देश्य से धीरेन्द्र जी आगे कदम बढ़ाना चाहते हैं, समाज में ऐसे पहल की सचमुच ज़रूरत है।

इसी बीच धीरेन्द्र जी बोले- "गोपीकृष्ण, बैठकर बातें करने में समय गंवाना ठीक नहीं! चलिए, पहले गाँव में अधिक से अधिक लोगों से संपर्क करके उन्हें सूचित कर दें कि आज दोपहर दो बजे आमसभा होगी, जिसमें आप सब भाग लें।"

हम तीनों, यानी धीरेन्द्रजी, दुनियालाल और मैं, गाँव की ओर चल पड़े।

दस कदम आगे बढ़े ही थे कि रास्ते में श्याम काका मिल गए। धीरेन्द्र जी की ओर इशारा करते हुए मैंने श्याम काका से कहा- "काका, इनका घर खैरबोनी है। ये हमारे पड़ोसी हैं। आज दो बजे गाँव में आमसभा करेंगे, उसमें आप रहें।"

श्याम काका कुछ कहने ही वाले थे कि बीच में धीरेन्द्र जी बोले- "आप बुजुर्ग हैं, इसलिए आज की सभा की अध्यक्षता का भार आप लीजिए।"

थोड़ी देर चुप रहकर श्याम काका बोले- "गाँव में सभा है, मैं जरूर रहूँगा।"

धीरेन्द्रजी बोले- "गोपीकृष्ण, घर-घर जाकर सूचना देना कठिन है, क्योंकि समय भी कम है। इसलिए मुहल्ले-मुहल्ले में, जहाँ दो-चार लोग मिलें, उन्हें बताते चलें।"

अब तक गाँव के समाज में कुछ अग्रणी लोग ही किसी सामाजिक या राजनीतिक काम में भाग लेते रहे हैं, बाकी लोग उससे दूर रहे हैं। वे क्यों दूर रहे, इसके कई कारण हैं। फिलहाल बस इतना कि धीरेन्द्र जी के विचार सुनकर गाँव के वे लोग भी सभा में आने को तैयार हो गए, जो अब तक कभी किसी आमसभा या सामाजिक-राजनीतिक सभा में नहीं आए थे।

दिन के ग्यारह बज चुके थे। हम तीनों ने पूरे गाँव का चक्कर लगा लिया। जो कोई मिला, सबको सूचना देते हुए घर लौट आए। घर पहुँचकर मैंने धीरेन्द्र जी से कहा- "धीरेन्द्र जी, आप नहा-धोकर खाना खा लें और कुछ देर आराम भी कर लें, फिर आमसभा में चलेंगे।" धीरेन्द्र जी बोले- "मेरा घर भी कोई बहुत दूर नहीं है। पंद्रह मिनट करीब जाने में और पंद्रह मिनट करीब आने में लगेंगे। घर जाकर यह भी कर लूँगा कि पत्नी को कह दूँ कि आमसभा में जा रहा हूँ, इसलिए लौटने में थोड़ी देरी भी हो सकती है, और माता-पिता को भी दवा खा लेने की याद दिला दूंगा।"

धीरेन्द्र जी चले गए। उनके जाने के बाद श्याम काका आकर बोले- "गोपीकृष्ण, गाँव की आमसभा है, तो इसकी व्यवस्था तो हमें ही करनी चाहिए।"

श्याम काका की बात सुनकर मैंने कहा- "काका, उचित तो यही होगा। आप अनुभवी हैं, बताइए, कैसे करेंगे?"

श्याम काका बोले- “आज अगर दस-पंद्रह दिन पहले जानकारी मिली होती, तो योजना बनाकर व्यवस्था होती, लेकिन ऐसा तो हुआ नहीं। जल्दबाज़ी में योजना बनी है, तो कम से कम लोगों के बैठने की जगह, माइक, और धीरेन्द्र जी के लिए चाय-नाश्ते की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए।”

मैंने कहा- “धीरेन्द्र जी मेरे मित्र हैं, तो चाय- नाश्ता की व्यवस्था मैं अपने घर से कर लूँगा। आप लोग समाज के बैठने की व्यवस्था कर दें।”

श्याम काका बोले- “मेरे पास तीन दरी है और रूपलाल के पास भी दो बड़ी दरी हैं। उससे माँगकर, पाँचों दरी को स्कूल के सामने बिछाकर वहीं सभा करेंगे। ऐसा करना ठीक भी रहेगा।”

बीच में ही दुनियालाल बोले- “श्याम काका, यह जिम्मेदारी मैं लेता हूँ।”

श्याम काका मेरी ओर देखते हुए बोले- “गोपीकृष्ण, गाँव में आमसभा हो तो हम लोगों पर इतना दायित्व तो है ही कि सभा का मज़ाक न उड़ाया जाए। लोगों को यह कहने का मौका न मिले कि यह सब मज़ाक हो रहा है।”

मैंने कहा- “जब सभी मन से लगेंगे, तो वैसा क्यों होगा! दो बजे से कार्यक्रम है इसलिए इस बीच के समय में ही सब काम निपटा लेंगे।”

श्याम काका ने दुनियालाल से कहा- “दुनियालाल, तुम मेरे साथ चलो। रूपलाल को मैं खुद कह दूँगा, और तुम किसी को साथ लेकर हमारे और रूपलाल के घर से दरी लेकर स्कूल के सामने अच्छी तरह बिछा दो।”

मैंने कहा- “गाँव में जिनके पास लाउडस्पीकर है, जो अच्छा है, उन्हें पकड़कर कह दें कि सुबह से ही राष्ट्रीय गीत का कैसेट बजाएँ और बीच-बीच में घोषणा भी करते रहें।”

श्याम काका बोले- “सोहन का स्पीकर सबसे अच्छा है। वह अभी हाल में ही खरीदा है और आमसभा के नाम पर पैसे भी नहीं लेगा।”

मैंने कहा- “काका, वह तो आपका ही आदमी है।”

श्याम काका बोले- “जब गाँव अपना है, तो गाँव के लोग क्या पराये हैं, यह जिम्मेदारी भी हमारे ही ऊपर आई।”

मैंने कहा- "काका, मात्र दो से ढाई घंटे का समय बचा है। इसी बीच हमें नहा-धोकर तैयार भी होना है और दरी-माइक की व्यवस्था भी करनी है। इसलिए सब लोग अपने-अपने काम में लग ही जाते हैं।"

डेढ़ बजे के करीब मानेसर, रसिकलाल और प्रदीप के साथ धीरेन्द्रजी आ पहुँचे। चारों को लेकर मैं स्कूल पहुँचा। धीरे-धीरे लोग आने लगे। महिलाएँ तो नहीं आईं, लेकिन स्कूल-कॉलेज की छात्राएँ आईं। भीड़ देखकर धीरेन्द्रजी का मन उत्साह से भर गया।

कार्यक्रम शुरू हुआ। श्याम काका अध्यक्षता करने लगे, तभी धीरेन्द्रजी ने कहा- "गाँववालों से एक बार आग्रह करें कि यदि किसी के मन में कोई प्रश्न हो तो वे रखें।"

मैंने कहा- "धीरेन्द्र जी, गाँव में इस तरह का कार्यक्रम पहली बार हो रहा है, इसलिए फिलहाल गाँववालों को छोड़ दें। आप अपने विचार सबको अच्छी तरह समझा दें।"

श्याम काका बोले- "भाइयों, धीरेन्द्र जी अपने विचार रख रहे हैं, इसलिए आप सभी लोग ध्यान से सुनें।"

धीरेन्द्र जी उठकर खड़े हुए और बोले- "बंधुगण, कबीरदास ने कहा है- "चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।" समय की गति सबसे ताकतवर है, जिस ओर कबीर ने इशारा किया है। लेकिन लोग इसे ठीक से समझ नहीं पाते। हमें गौर करके देखना होगा कि ये दो पाट किसके हैं और इनके बीच मनुष्य कैसे पिसता है। इसे इस तरह समझिए कि एक ओर राजा है और दूसरी ओर रंक। राजा सब कुछ से सम्पन्न है, और रंक यानी भिखारी के पास अपने शरीर के अलावा कुछ नहीं। आखिर ऐसा क्यों कि एक मनुष्य राजा है और दूसरा भिखारी, जबकि दोनों ही मनुष्य हैं?

यही है समाज में मनुष्य-मनुष्य के बीच की विषमता।

जैसे एक ओर धनी लोग हैं जो हर चीज़ से सम्पन्न हैं, रहने के घर-द्वार से लेकर खाने-पीने और भोग-विलास की सारी वस्तुओं तक, वैसे ही दूसरी ओर वे लोग भी हैं जिनके पास कुछ नहीं है। न पेट में अन्न है, न तन पर वस्त्र, न रहने

को घर-द्वार, और न जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने का कोई साधन।

ऐसी विषमता आज की ही नहीं है, बल्कि जिस दिन से धरती पर मनुष्य का आगमन हुआ, उसी दिन से है यह किसी न किसी रूप में चलती आ रही है। अभी मनुष्य के इतिहास पर, यानी वह धरती पर कैसे आया, इस पर चर्चा नहीं करूंगा। फिलहाल इतना ही कहूँगा कि गाँव से लेकर पूरे देश-दुनिया तक यह विषमता फैली हुई है।

इसी विषमता के बीच शोषक और शोषित दो वर्ग बन गए हैं, जिससे मनुष्य का जीवन जानवर के जीवन से भी बदतर हो गया है। इसने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, सबको प्रभावित किया है। आज हम सब यहाँ बैठकर इस विषमता को अच्छी तरह जानें और समझें। जब तक यह विषमता बनी रहेगी, तब तक मनुष्य का कल्याण संभव नहीं है। मनुष्य होकर भी मनुष्य का जीवन; मनुष्य के जीवन से लाखों किलोमीटर दूर रहेगा।

विचार में यह कहना आसान है कि सभी मनुष्य हैं, सबका जीवन मनुष्य की तरह बीते, सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो, सभी के बच्चे पढ़-लिखें, एक समरस समाज बने। लेकिन यह सब केवल मन को बहलाने की बातें होंगी, और कुछ नहीं।

जब तक जीवन में समरसता नहीं आएगी, सभी को जीवन जीने की सुविधा नहीं मिलेगी, तब तक जैसे अब तक दुनिया में मुट्ठीभर लोग सम्पन्न हैं और विशाल जनसमूह कंगाल, वैसे ही आगे भी यह स्थिति सदैव ही बनी रहेगी।

आप सबसे आग्रह करता हूँ कि आप सब स्वयं को पहचानें और अपने-अपने दायित्व को निभाएँ। बस, आज इतना ही कहूँगा।” ❑

दूरदृष्टि और दिव्यदृष्टि

☰

हाई स्कूल के दिनों में ही विष्णुदेव के भीतर संकल्पशक्ति का उदय हो गया था। संकल्पशक्ति आने से पहले मनुष्य में सबसे पहले इच्छाशक्ति जागती है। इच्छाशक्ति के बाद संकल्पशक्ति आती है, और संकल्पशक्ति के बाद एकाग्रता की शक्ति, जिससे सफलता प्राप्त होती है।

यद्यपि साधना की वह पूरी सीढ़ी विष्णुदेव में अभी नहीं आई थी, फिर भी उसके मन में यह भाव दृढ़ हो गया था कि मैं जो कार्य कर रहा हूं, उसमें श्रेष्ठता और सफलता अवश्य प्राप्त करनी है, अपने वर्ग में सबसे अच्छा करना है। यही विचार उसे एकाग्र भी बनाता गया और पढ़ाई की ओर आकर्षित करता गया, जिसके परिणामस्वरूप वह साधारण श्रेणी का छात्र होते हुए भी प्रथम स्थान पर पहुंच गया। संकल्पशक्ति के जागने के साथ ही विष्णुदेव अपने वर्ग में, जब वह नौवीं कक्षा में पढ़ता था, साधारण श्रेणी के छात्र होते हुए भी अचानक उभरकर, यानी आगे बढ़कर, प्रथम स्थान पर आ गया। नौवीं में जब विष्णुदेव ने प्रथम स्थान प्राप्त किया, तब से वह अपने वर्ग में लगातार प्रथम आने लगा। मैट्रिक की टेस्ट परीक्षा तक, जो बोर्ड परीक्षा से पहले होती है, उसने यह प्रथम स्थान बनाए रखा।

मनुष्य बदलता है तो उसकी चेतना भी बदलती है। इस परिवर्तन का मुख्य आधार संकल्पशक्ति को अपने भीतर जगाना है। अब तक मानव का जो विकास हुआ है, उसमें संकल्पशक्ति का विशेष योगदान रहा है। आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य ने जितनी दूरियां पार की हैं, अर्थात जो पहले नहीं था उसे प्राप्त किया है, जितना विकास किया है, उसमें संकल्पशक्ति की भूमिका अत्यंत

महत्वपूर्ण रही है। इसी शक्ति के बल पर उसके शरीर का आकार बदला, स्वरूप बदला, इंद्रियाँ बदलीं और चेतना भी रूपांतरित हुई। इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति और एकाग्रता तीनों ही अत्यंत बड़ी शक्तियाँ हैं।

संकल्पशक्ति का अर्थ है, दृढ़ निश्चय करना और उस निश्चय के पीछे स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर देना।

खैर जिस प्रकार से विष्णुदेव ने मैट्रिक में प्रथम श्रेणी से सफलता प्राप्त की, उसी प्रकार इंटर में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा देने के बाद वह गाँव लौट आया। अन्य विद्यार्थी की तरह जैसे- कुछ लोग तीर्थयात्रा के लिए निकल जाते हैं, तो कुछ बड़े शहर घूमने के लिए जाते हैं, पर विष्णुदेव परीक्षा देने के पश्चात सीधे गाँव आ गया।

गाँव पहुँचकर उसने सोचा कि लगभग ढाई-तीन महीने बाद परीक्षा का परिणाम आएगा, फिर आगे की कक्षा में नामांकन कराऊंगा। एम.ए. करने के बाद कॉलेज में अध्यापक, यानी प्रोफेसर बनने का विचार उसके मन में पक्का हो चुका था। आगे की पढ़ाई में प्रवेश लेने से पहले और बी.ए. की परीक्षा देने के बाद जो यह ढाई-तीन महीने का अंतराल था, उसमें रामायण और महाभारत का अध्ययन करने का विष्णुदेव ने निश्चय किया। इसी सोच के साथ उसने बी.ए. की परीक्षा के बाद यह दोनों ग्रंथ दरभंगा से खरीद कर अपने गांव लाया।

गाँव आकर जब विष्णुदेव ने इन ग्रंथों का आकार और मोटाई देखी, तो मन पीछे हट गया। कारण यह था कि इतने बड़े आकार के ग्रंथ का अध्ययन ढाई-तीन महीने में संभव ही नहीं था। सोच-विचार कर उसने तय किया कि रामायण और महाभारत का अध्ययन कॉलेज जीवन के बाद करूंगा, अभी केवल गीता का अध्ययन करूंगा, जो महाभारत का ही एक अंश है।

इसके लिए वह पुनः गाँव से दरभंगा गया और गीता की खोज में पुस्तक-भंडार पहुंचा। जब विष्णुदेव ने दुकानदार से गीता के बारे में पूछा, तो दुकानदार ने भाष्य सहित गीता के कई संस्करण दिखाए। एक से एक पुस्तक उनके सामने रख दी गई। उनमें पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का भाष्य, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का भाष्य, विनोबा भावे का भाष्य और कई साधु-महात्माओं

के भाष्य भी थे।

गीता के इतने रूप देखकर विष्णुदेव उलझन में पड़ गए कि कौन-सी पुस्तक लूं और कौन-सी छोड़ दूं। सभी पुस्तक ले लूंगा तो ढाई-तीन महीने में सबों को पढ़ पाना भी संभव नहीं होगा। इसलिए उसने निश्चय किया कि दुकानदार से ही पूछ लें कि कौन-सी पुस्तक उनके उद्देश्य के लिए सबसे उपयुक्त होगी। उन्होंने दुकानदार से कहा- "मुझे ढाई-तीन महीने में गीता का अध्ययन करना है, तो उसी के अनुसार जो पुस्तक उचित हो, वह दीजिए।"

विष्णुदेव की यह मांग सुनकर दुकानदार ने उनके चेहरे पर नज़र डाली और समझ गया कि वे वास्तव में लगनशील हैं। इसलिए केवल बिक्री के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि अध्ययन के हित में सलाह देना ही अपने धर्म की रक्षा होगी। वह बोला- "जिस जिज्ञासा से आप पुस्तक लेना चाहते हैं, उसके अनुसार अच्छा होगा कि बाल गंगाधर तिलक और सर्वपल्ली राधाकृष्णन की गीता ले लें। इन पुस्तकों में श्लोकों की उत्कृष्ट व्याख्या है। हमारे समाज में गीता का अध्ययन करने वाले अस्सी से नब्बे प्रतिशत लोग तुलसी कृत रामायण के अंश 'हनुमान चालीसा' और महाभारत के अंश 'गीता' का केवल पाठ करते हैं, लेकिन जब आप अध्ययन के दृष्टिकोण से लेना चाहते हैं, तो तिलक और राधाकृष्णन का भाष्य ही उपयुक्त होगा।"

दुकानदार की यह बात सुन विष्णुदेव ने पूछा- "आपने क्या पाठ कहा?"

दुकानदार मुस्कुराते हुए बोला- "चालीस वर्षों से दुकानदारी कर रहा हूँ, अर्थात पुस्तकें बेचता हूँ, इस दौरान तरह-तरह के ग्राहकों से भेंट हुई है। वे अपने-अपने विचार रखते हैं और मैं उसी अनुसार कहता हूँ। गीता मात्र पाठ करने की वस्तु नहीं है, यह जीवन के रहस्यों को उद्घाटित करती है, अर्थात जीवन का पाठ सिखाती है।"

दुकानदार के विचार को सुनकर विष्णुदेव ने चुपचाप दोनों पुस्तकें, तिलक और राधाकृष्णन के भाष्य, खरीदीं और गाँव लौट आया।

गाँव आकर जब विष्णुदेव ने दोनों पुस्तकों को उलट-पुलट कर देखा तो गीता के श्लोक देखकर मन घबरा गया। घबराहट का कारण यह था कि अब तक

जो संस्कृत उसने पढ़ी थी, यानी हाई स्कूल में मैट्रिक तक, वह साधारण स्तर की थी, जबकि गीता के श्लोक कठिन थे, जिन्हें स्वयं से पढ़ना और समझना आसान नहीं था। उनके मन में यह विचार इसलिए आया क्योंकि वैदिक भाषा से लेकर अठारहों पुराण और वाल्मीकि रामायण जैसे शास्त्रों की जो समासनिष्ठ शैली है, उसकी व्याख्या व्याख्याकारों ने गहन और सूक्ष्म ढंग से की है, जिसे पकड़े बिना, अर्थात समझे बिना, वास्तविक सारतत्त्व नहीं पाया जा सकता।

अचानक विष्णुदेव के मन में विचार आया कि अब यही अच्छा होगा की ज्योतिषी बाबा से कहूं कि वे मुझे गीता पढ़ा दें।

ज्योतिषी बाबा का नाम रघुवंश है। वे संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक रह चुके हैं, दस वर्ष पूर्व ही सेवा-निवृत्त हुए हैं। अभी उनकी आयु सत्तर-पचहत्तर वर्ष के बीच है। दोनों बेटे संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक हैं और ज्योतिषी बाबा स्वयं दिन भर, जीवन के क्रिया-कर्म से निवृत्त होने के बाद, शास्त्र-पुराण के अध्ययन-मनन में ही लगे रहते हैं। विचारों में वे इतने परिपक्व हो चुके हैं कि जैसे गंगा में गंगाजल दिन-रात प्रवाहित होता रहता है, वैसे ही उनके हृदय में प्रेम, करुणा, दया और विनयशीलता जैसे मानवीय गुण निरंतर प्रवाहित होते रहते हैं।

गाँव-समाज के पढ़े-लिखे लोग उन्हें 'ज्योतिषी बाबा' या 'ज्योतिषी काका' कहते हैं, जबकि अशिक्षित लोग 'जोतखी बाबा' या 'जोतखी काका' कहते हैं। किंतु इससे ज्योतिषी बाबा के मन में रत्ती भर भी ग्लानि नहीं होती। वे भली-भाँति समझते हैं कि पढ़े-लिखे लोगों का भाषा पर; अध्ययन का प्रभाव होता है, जबकि अशिक्षित लोगों की बोली पर समाज का प्रभाव अधिक पड़ता है।

ज्योतिषी बाबा के पास पहुँचकर विष्णुदेव ने प्रणाम किया और कहा- "बाबा, ढाई-तीन महीने का अवकाश है, आप गीता पढ़ा दीजिए।"

विष्णुदेव के बारे में ज्योतिषी बाबा को थोड़ी-बहुत जानकारी थी, पर सामने से बातचीत आज ही हो रही थी। ज्योतिषी बाबा बोले- "बेटा, मेरी भी इच्छा रहती है कि अधिक से अधिक लोग शास्त्र-पुराण, विशेषकर गीता का अध्ययन करें, लेकिन सामाजिक परिस्थिति ऐसी बन गई है कि लोग अपनी

जटिल और विकराल समस्याओं में इस कदर उलझ गए हैं कि शास्त्र-पुराण का अध्ययन ही नहीं कर पाते। यदि तुम्हारे मन में ऐसी जिज्ञासा जगी है, तो यह खुशी की बात है।"

ज्योतिषी बाबा के विचार सुनकर विष्णुदेव बोले- "बाबा, अब तक विद्यालय और महाविद्यालय में समय बीता है। बी.ए. की परीक्षा दे चुका हूँ, परिणाम आने के बाद एम.ए. में नाम लिखवाऊँगा। इस बीच के ढाई-तीन महीने में इच्छा है कि गीता का अध्ययन करूँ।"

विष्णुदेव की जिज्ञासा देखकर ज्योतिषी बाबा बोले- "बेटा, गीता तो जीवन का पाठ है, जितना अध्ययन करोगे उतना नया जीवन मिलेगा। फिलहाल जो समय तुम्हें मिला है, उसमें इतना तो संभव है कि गीता-ज्ञान की जो दिशा है, उसे समझ सको।"

अब तक विष्णुदेव गीता को वैसे ही शास्त्र मानते थे जैसे अन्य हैं। वे यह नहीं समझ पाए थे कि गीता कामधेनु के समान है। उन्होंने कहा- "बाबा, गीता का अध्ययन करने से पहले उसकी भूमिका के विषय में कुछ..."

विष्णुदेव की जिज्ञासा ज्योतिषी बाबा ने भाँप ली। वे बोले- "बेटा, गीता महाभारत का एक अंश है, जिसमें कृष्ण ने अर्जुन को दिव्यज्योति, अर्थात दिव्यदृष्टि प्रदान की।"

'दिव्यदृष्टि' सुनकर विष्णुदेव ने ज्योतिषी बाबा से पूछा- " दिव्यदृष्टि क्या होता है, बाबा?"

विष्णुदेव की जिज्ञासा सुनकर ज्योतिषी बाबा बोले- "बेटा, महाभारत के गीता-अंश में कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि दी, जबकि संजय को धृतराष्ट्र के लिए दूर दृष्टि प्रदान की। इसलिए पहले मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि और दूर दृष्टि की विस्तृत व्याख्या बतलाता हूं। पहले इन्हें अच्छी तरह हृदयंगम कर लो, फिर गीता के एक-एक श्लोक की चर्चा करेंगे।"

जैसे किसी को राह चलते कोई अमूल्य वस्तु मिल जाएं तो मन में अपार खुशी होती है, वैसे ही विष्णुदेव के मन में भी खुशी भर गई। ज्योतिषी बाबा के विचार सुनकर उन्होंने कुछ नहीं कहा, लेकिन अपनी इंद्रियों को सजग कर लिया।

यह देखकर ज्योतिषी बाबा समझ गए कि विष्णुदेव सुनने के लिए पूरी तरह तैयार हैं।

ज्योतिषी बाबा बोले- "बेटा, दूरदृष्टि और दिव्यदृष्टि अपनी संरचना, अर्थ की गहराई और प्रयोग-क्षेत्र की दृष्टि से अलग होते हुए भी आपस में गहरा संबंध रखते हैं। दोनों ही दृष्टि की शक्ति है। अंतर बस इतना है कि क्या देखते हैं, कैसे देखते हैं, कब देखते हैं और कहाँ देखते हैं।

दूरदृष्टि शब्द जितना सामान्य प्रतीत होता है, उसका अर्थ उतना ही गहरा है। यह ऐसी क्षमता को इंगित करता है जो वर्तमान परिस्थितियों, संकेतों, अनुभव और ज्ञान के आधार पर भविष्य की संभावनाओं को पहले से पहचान लेती है। दूरदृष्टिवान व्यक्ति समाज, राजनीति, जीवन, शिक्षा और नीति-निर्माण जैसे क्षेत्रों में दीर्घकालीन परिणामों का पूर्वानुमान लगाकर विवेकपूर्ण निर्णय लेता है। यह निर्णय भले तत्काल सुखद न हो, लेकिन दीर्घकाल में समाज के लिए लाभकारी सिद्ध होता है।"

ज्योतिषी बाबा की बात सुनकर विष्णुदेव कुछ कहना चाहते थे, पर मन ने रोका, इसलिए चुप रहे।

ज्योतिषी बाबा आगे बोले- "चाणक्य, महात्मा गांधी, मार्क्स, अब्राहम लिंकन जैसे लोग ऐसे ही दूरदृष्टिवान थे जो भविष्य को देखते रहते थे। इसके विपरीत दिव्यदृष्टि एक अलौकिक और आध्यात्मिक शब्द है। यह साधारण नेत्र से दिखने वाले दृश्य से परे की अनुभूति है। इसके माध्यम से सूक्ष्मलोक, देवगण, आत्मा, भविष्यकाल जैसी अदृश्य घटनाएँ देखी जा सकती हैं। शास्त्र-पुराण में ऐसी कई घटनाओं का वर्णन है। जैसे, महाभारत में संजय हस्तिनापुर में बैठकर कुरुक्षेत्र का युद्ध देख रहे थे, उसी तरह अगस्त्य, व्यास, नारद आदि ऋषि भविष्य और परलोक के दृश्य देख सकते थे। दिव्यदृष्टि मानव प्रयास से नहीं, बल्कि योगबल, तप और देवी अनुग्रह से प्राप्त होती है। इसमें तर्क नहीं, अनुभव भी नहीं, बल्कि आत्मज्ञान, ध्यान और अंत:करण की पवित्रता कार्य करती है। इन दोनों दृष्टियों में एक सूक्ष्म समानता है, और वह यह कि दोनों ही भविष्य को देखने के साधन हैं, लेकिन अलग-अलग स्तर पर।"

विष्णुदेव ने पूछा- "अलग-अलग स्तर पर, कैसे"?"

ज्योतिषी बाबा बोले- "एक सांसारिक प्रयत्न से उत्पन्न यथार्थ-दृष्टि है और दूसरी आध्यात्मिक साधना से उपजी अंतर्यामी-दृष्टि।"

विष्णुदेव ने फिर पूछा- "महाभारत का युद्ध क्या है?"

मुस्कुराते हुए ज्योतिषी बाबा बोले- "महाभारत का कुरुक्षेत्र युद्ध केवल अस्त्र-शस्त्र की टकराहट नहीं, बल्कि चरित्र, दृष्टिकोण और चेतना का भी संघर्ष है।"

कुरुक्षेत्र के युद्ध का उल्लेख सुनकर विष्णुदेव ने कुछ कहा नहीं, पर गहरी साँस ली।

ज्योतिषी बाबा ने कहा- "दिव्यदृष्टि एक ऐसी अवधारणा है जो गीता और महाभारत में अर्जुन-कृष्ण संवाद में केवल अद्भुत अनुभव ही नहीं, बल्कि गूढ़ आध्यात्मिक प्रक्रिया, परम साक्षात्कार और ब्रह्मज्ञान के उद्भव का बिंदु भी है। यह ईश्वर के विराट स्वरूप, काल-स्वरूप, समष्टि चेतना और सृष्टि के एकात्म दर्शन का अद्भुत साधन है। अभी इतना ही! अंत में आज यही कहूँगा कि दूरदृष्टि वर्तमान से भविष्य देखने की सामर्थ्य देती है और दिव्यदृष्टि चेतना की गहराई देखने की। यदि दूरदृष्टि बुद्धि की आँख है तो दिव्यदृष्टि हृदय की। ये दोनों दृष्टियाँ परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक हैं। एक कहती हैं- दूर देखो और दूसरी कहती है भीतर देखो। ढाई-तीन महीने तुम भी तो गाँव में रहोगे ही, बाकी बातें फिर...!" ❑

झूठ की शव–परीक्षा

☰

आरंभ से ही हमारे समाज और परिवार में बच्चों को माता–पिता तथा विद्यालय में गुरुजन यह सिखाते आए हैं कि झूठ बोलना पाप है और सत्य बोलना पुण्य। बड़ों का सम्मान करना धर्म है, चोरी न करना धर्म है और चोरी करना पाप है। इस प्रकार अनेक नीति–प्रधान शिक्षाएँ बच्चों को निरंतर मिलती रही है।

हालांकि, अब तक हमारे समाज में आधे से भी कम बच्चों ने विद्यालय का मुख देखा है। इनमें भी बेटों की संख्या अधिक रही है, जबकि बेटियों की संख्या अपेक्षाकृत कम। इस कारण सौ प्रतिशत बच्चों को यह पाठ अर्थात सत्य बोलना पुण्य है और झूठ बोलना पाप है, विद्यालय के गुरुजनों से प्राप्त नहीं हो पाया, पर माता–पिता से तो यह शिक्षा मिलती ही रही है। जिस प्रकार विद्यालय के शिक्षक को 'गुरु' कहा जाता है, उसी प्रकार माता–पिता को भी गुरु माना जाता रहा है। यहाँ तक कि समाज में यह परंपरा भी रही है कि यदि किसी से कोई अच्छा विचार या किसी उत्तम कार्य की प्रेरणा मिले, तो उसे भी गुरु कहा जाता है।

जब हम अपने समाज और देश की दृष्टि से संपूर्ण विश्व की ओर देखते हैं, तो यह भी स्पष्ट होता है कि बहुत से ऐसे देश हैं, जहाँ सौ प्रतिशत लोग शिक्षित हैं और प्रत्येक बच्चा विद्यालय जाता है। निस्संदेह, संसार बहुत विशाल है, जिसमें सैकड़ों देश हैं, जो भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से समान नहीं हैं। जिस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत उन्नत देश हैं, उसी प्रकार अत्यंत पिछड़े देश भी हैं। कोई देश ऐसा है, जहाँ उपजाऊ भूमि अधिक होने के कारण वहाँ विविध प्रकार

के अन्न, फल–फूल की भरपूर पैदावार होती है; तो कोई देश ऐसा भी है, जिसकी मिट्टी बालूयुक्त या पथरीली है, जिससे उसकी उत्पादकता कमजोर है। कुछ देश ऐसे भी हैं, जो पठार और पर्वतों से भरे हैं, जिस कारण वहाँ की उपज कम है और जीवन भी कठिन।

खैर, यह सब तो दुनिया की बातें हुईं। हमारे यहाँ, अर्थात उत्तर बिहार या मिथिलांचल की भूमि में, अनेक नदियाँ हैं, जिसे गंगा–ब्रह्मपुत्र का मैदान भी कहा जाता है। यहाँ जिस प्रकार अन्न की प्रचुर पैदावार होती है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के फल–फूलों की उपज भी होती है।

जिस देश या समाज की उत्पादकता और भौगोलिक संरचना जैसी होगी, वैसा ही वहाँ के लोगों का जीवन और उन्नति का मार्ग भी होगा। हमारे यहाँ, अर्थात हमारे समाज में, बच्चों को ऐसे पाठ और संस्कार दिए जाते रहे हैं, जिनसे अधिक से अधिक श्रेष्ठ और सज्जन मनुष्य का निर्माण हो सके। अनेक विद्वान और ऋषि–मुनियों ने इसी उद्देश्य से प्रयास किया है कि मनुष्य और समाज दोनों अधिक से अधिक सुंदर और उत्तम बनें। इस लिए कहा गया है- "जैसा देश, वैसा भेष।"

सत्य बोलना पुण्य है और झूठ बोलना पाप है। यह शिक्षा हमारे यहाँ प्राचीन काल से दी जाती रही है। इन्हीं 'सत्य' और 'झूठ' की मान्यताओं की मानो आज एक प्रकार की शव–परीक्षा हो रही है। शव–परीक्षा का अर्थ है पोस्टमार्टम। वैसे, गौड़ जी, अर्थात नवल किशोर गौड़, जो लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर के पूर्व प्राचार्य थे, उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत में 'छायावाद' का भी पोस्टमार्टम किया था, और यदि आज वे जीवित होते तो न जाने साहित्य के कितने उत्तरवर्ती वादों का भी विश्लेषण–विच्छेदन कर चुके होते। दुर्भाग्य यह है कि अब वे नहीं रहे, जो अन्य वादों की भी शव–परीक्षा कर पाते। एक कहावत है- "जो जीता है, वही फाग खेलता है; जो मरता है, वह लिखा जाता है।" बस, गौड़ जी अब केवल लेखों में शेष हैं।

सावन माह का अंतिम सप्ताह था। दिन के लगभग दस बजे का समय। धूप और गर्मी दोनों अपने विकराल रूप में थीं। दरवाज़े पर बैठा मैं मन ही मन

सोच रहा था। समय के हिसाब से तो यह काम करने का उपयुक्त वक्त है, क्यों न कोई आवश्यक कार्य निपटा लिया जाए और फिर नहा लिया जाए। लेकिन गर्मी के तीव्र प्रकोप को देखकर मन हिचक रहा था कि ऐसे समय में यदि धूप में निकलकर कोई काम किया, तो बीमारी घेर सकती है। स्वस्थ रहा तो किसी और समय काम कर लूँगा, पर यदि अस्वस्थ हो गया तो न केवल काम रुक जाएगा, बल्कि बीमारी का भी ठिकाना नहीं कि क्या होगा और कब तक ठीक होगा। इसलिए निश्चय किया, अब बाहर काम करने नहीं जाऊँगा।

इन्हीं विचारों में था कि ननौर वाली भाभी आकर बोलीं- “बौआ, गाँव में लोग तो बहुत हैं, लेकिन किसुनलाल जैसा एक भी नहीं है।”

पहले तो भाभी की बात का कोई सिर–पैर समझ में नहीं आया। क्योंकि गाँव में एक से बढ़कर एक अच्छे लोग भी हैं और बुरे भी हैं। अच्छे लोगों का मतलब वे जिनका आचरण और वाणी दोनों उत्तम हैं। उसी तरह, एक से बढ़कर एक बुरे लोग भी हैं, जिनकी वाणी और आचरण दोनों ही अधम हैं। मैंने पूछा- “क्या मतलब, भाभी?”

भाभी बोलीं- “ऐसा फुसियाहा (फिजूल और बेकार की बातें करने वाला) आदमी गाँव में एक भी नहीं है।”

भाभी के मुँह से ‘फुसियाहा’ शब्द सुनकर मन में विचार आया कि सचमुच गाँव में ऐसा कोई नहीं है जो सौ प्रतिशत सत्य ही बोलता हो या सौ प्रतिशत झूठ ही। भाभी की बात को टालते हुए मैंने कहा- “भाभी, नहाने का समय हो गया है। गर्मी से मन घूम रहा है, तो अभी आप जाइए। मैं भी नहाने जा रहा हूँ।”

जैसा मैंने कहा, वैसे ही भाभी भी चलीं गईं। थोड़ी देर बाद मन में आया कि यह बात केवल आज की नहीं है; बरसों से देखता आ रहा हूँ कि एक ही मुँह, अर्थात एक ही व्यक्ति, सत्य भी बोलता है और झूठ भी।

फिर विचार अपने ऊपर आया। अपने ऊपर नज़र पड़ते ही मन ने स्वीकार किया कि समय–समय पर मैं भी झूठ और सत्य दोनों बोलता हूँ। फिर मन बच्चों की ओर गया, जिस बच्चे को माता–पिता, समाज के लोग और विद्यालय में शिक्षक यह सिखाते हैं कि झूठ बोलना पाप है और सत्य बोलना पुण्य, तो फिर

उसके भीतर झूठ बोलने की प्रवृत्ति आती कहाँ से है?

कितना ही मन में विचार किया, पर प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। सोचते–सोचते मन बोझिल हो गया, पर समाधान नहीं हुआ। अंततः हार मानकर निश्चय किया कि अभी तो नहाने–खाने का समय हो गया है, ऊपर से इतनी धूप और गर्मी है कि यदि घर से बाहर निकला तो बीमार पड़ सकता हूँ। बेहतर होगा कि जब दोपहर ढले और धूप उतर जाए, तब विजय काका के घर जाकर उनसे पूछूँ। मन यह तय कर चुका था।

नहा–खाकर खाट पर गया, पर नींद नहीं आई। एक तो हवा थम गई थी, ऊपर से धरती से आकाश तक इतनी गर्मी फैली थी कि जितना भी पंखा चलाओ, जरा-सी भी ठंडक नहीं मिल रही थी। समय भी कुछ ऐसा ही था। सावन का महीना जिसमें एक दिन भी ऐसी वर्षा नहीं हुई जिससे धान की रोपनी होती या तालाब–पोखर भरते। जैसे खेत सूखकर पत्थर हो गए थे, वैसे ही पेड़–पौधों का रंग भी मुरझाकर फीका पड़ गया था।

जब दिन ढलने लगा, लगभग चार बजे, तो चाय पीकर विजय काका के घर पहुँचा। काका दरवाज़े पर अकेले बैठे, आँखें मूँदे, मन ही मन कुछ सोच रहे थे। हल्के स्वर में बोला- “काका, प्रणाम।”

मेरी आवाज़ सुनकर काका चौंके, आँखें खोल कर मुझे देखते ही बोले- “भले रहो।”

मैं तब तक काका के पास पहुँच चुका था। उन्होंने हाथ से इशारा कर एक कुर्सी दिखाते हुए कहा- “बैठो।”

जैसा काका ने कहा, वैसा ही मैंने किया और बगल की कुर्सी पर बैठ गया। पसीने से तर-बतर था, इसलिए तौलिया से चेहरा पोंछने लगा। पसीना पोंछ ही रहा था कि बीच में ही काका ने पूछा- “ऐसे समय में यहां आने का क्या कारण है, सुधीर?”

मैंने कहा- “काका, दरवाज़े पर बैठा मन ही मन सोच रहा था कि गाँव में अधिकतर लोग ऐसे हैं जो पूरे दिन बेकार की बातें करते हैं।” भाभी की बात मैंने काका से नहीं कही, पर वह मन में जरूर थी।

मेरी बात सुनकर काका मन ही मन मुस्कुराने लगे, पर बोले कुछ नहीं। मैं उनके चेहरे को देखता रहा और वे मेरे चेहरे को। मुझे लगा, शायद काका आगे की बात सुनना चाहते हैं, और मैं यह भी सोच रहा था कि अब काका क्या कहेंगे। कुछ देर दोनों के बीच चुप्पी बनी रही। फिर काका बोले- "क्या झूठ की खेती, सुधीर?"

मैंने कहा- "काका, गाँव में एक भी ऐसा व्यक्ति, यानि दस प्रतिशत भी, नहीं है जो झूठ न बोलता हो। यही आश्चर्य है कि जब सब झूठ बोलेंगे, तो समाज में एक–दूसरे के बीच संबंध आखिर कैसे बने रहेंगे?"

मेरी बात गंभीरता से सुनकर काका बोले- "सुधीर, दुनिया में न तो सब कुछ शाश्वत है और न ही सब कुछ अशाश्वत। शाश्वत भी है और अशाश्वत भी, दोनों है। यह दोनों साथ–साथ चलते हैं। समय पाकर कभी शाश्वत भी अशाश्वत बन जाता है और कभी अशाश्वत भी शाश्वत हो जाता है, इसलिए निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।"

विजय काका की बात मैं आधी समझ पाया और आधी नहीं। वह आधी समझ में आई, जिस पर दृष्टि थी, और आधी नहीं, जिस पर दृष्टि नहीं थी। मैंने कहा- "काका, शाश्वत–अशाश्वत का झूठ बोलने से क्या संबंध है? शाश्वत–अशाश्वत तो स्थायी प्रक्रियाएँ हैं, जबकि झूठ तो दैनिक व्यवहार का विषय है, जो सीधे–सीधे एक–दूसरे के जीवन से जुड़ा है।"

विचार को आगे बढ़ाते हुए विजय काका बोले- "सुधीर! अभी दुनिया की बात छोड़ो कि उसमें कितने लोग झूठ बोलते हैं और कितने लोग सच। अभी अपने समाज, यानी गाँव के लोगों की, चर्चा करते हैं।"

विजय काका की यह बात मुझे भी उचित लगी, क्योंकि जिस तरह एक रूप विश्व–रूप में परिणत होता है और विश्व–रूप पुनः एक रूप में बदल जाता है, वैसे ही समाज से ही विश्व की संरचना बनती है। मैंने कहा–

"हाँ काका, यह अच्छा रहेगा। सात अरब लोगों की दुनिया में सात अरब तरह की बुद्धि और विवेक हैं। इतने विचार अगर एक जगह समेटने की कोशिश करेंगे, तो वह वैसा ही हो जाएगा जैसे सिंगही मछली को तराजू पर तौलना, एक

को पलड़े पर रखेंगे तो दूसरा कूदकर नीचे चला जाएगा, और उसे पकड़कर पलड़े पर रखेंगे तो तीसरा नीचे फिसल जाएगा।"

विजय काका पुनः बोले- "सुधीर, बचपन से ही लोग माता–पिता, समाज के लोग और गुरुजन बच्चों को ज्ञान देते हैं, लेकिन सौ प्रतिशत नहीं। क्योंकि लोगों के मन में यह धारणा गहरी बसी हुई है कि जब तक सौ प्रतिशत–सत्य बोलने वाला एक भी व्यक्ति नहीं है, तब तक दुनिया का चलना असंभव है। इसलिए सौ प्रतिशत नहीं, पर नब्बे–पंचनावें प्रतिशत झूठ बोलने वाले लोग तो मिलते ही हैं। हाँ, ऐसे लोग कम होते हैं, क्योंकि जो बहुत अधिक, अर्थात नब्बे–पंचनावें प्रतिशत लोग, झूठ बोलने वाले होते हैं, उनका झूठ सब पहचानने लगते हैं, जिससे उन पर विश्वास समाप्त हो जाता है।"

विजय काका की बातों के प्रवाह में मैंने कहा- "हाँ, यह बात तो सही है।"

काका ने आगे कहा- "उससे कम–अस्सी–पचासी प्रतिशत–झूठ बोलने वाले भी होते हैं। उनसे भी कम–सत्तर–पचहत्तर प्रतिशत–झूठ बोलने वाले, और इसी तरह घटते–घटते पचास प्रतिशत से अधिक झूठ बोलने वाले।"

मैंने सहमति दी- "हाँ, ऐसे लोग तो हैं।"

काका बोले- "आधे से कम–यानी पचास प्रतिशत से कम–झूठ बोलने वाले वे होते हैं, जो आधे से अधिक सच बोलते हैं। जैसे–जैसे झूठ की मात्रा घटती जाती है, वैसे–वैसे सत्य की मात्रा बढ़ती जाती है।"

अनायास मेरे मुँह से निकल गया- "लोग भी अजीब होते हैं।"

काका मुस्कराते हुए बोले- "सुधीर, जो लोग झूठ बोलते हैं, वे यह थोड़े मानते हैं कि हम झूठ बोल रहे हैं।"

मैंने पूछा- "तो?"

काका बोले- "झूठ बोलने को लोग चालाकी समझते हैं। मतलब, हम बुद्धिमान हैं। अपने को बुद्धिवान मानकर लोग झूठ बोलते हैं। वैसे भी, समय की गति ऐसी है कि मौका पाकर झूठ भी सच हो जाता है और सच भी झूठ। जैसे, कल तक जिसे लोग धर्म मानते थे, वह आज अधर्म हो गया है, और जिसे अधर्म समझते थे, वह आज धर्म बन गया है।"

काका की यह बात सुनकर मुझे भी आश्चर्य हुआ कि धर्म कैसे अधर्म बन सकता है और अधर्म धर्म में बदल सकता है, जबकि धर्म तो शाश्वत सत्य है। मैंने पूछा- "यह कैसे, काका?"

काका ने कहा- "सुधीर, शास्त्र और पुराण कहते हैं, और लोग मानते भी हैं, कि धर्म शाश्वत सत्य है। वह जीवन का सत्य है जो दिन–प्रतिदिन, जीवन के साथ–साथ, बढ़ता है पर घटता नहीं। लेकिन व्यवहारिक रूप में, यानी जीवन की क्रिया के रूप में, वह बदलकर चालाकी का रूप ले लेता है, जिससे धर्म और अधर्म के स्वरूप बदल जाते हैं। अपने समाज में ही; चारों ओर देखो। कल तक बेटा–बेटी के विवाह में जो नगद–दहेज–लेता था, वह अधार्मिक, यानी पापी माना जाता था, और जो दहेज नहीं लेता था, वह धार्मिक समझा जाता था। लेकिन आज क्या देख रहे हो? यही न कि जो जितना अधिक नगद लेता है, उसे उतना ही बड़ा धर्मात्मा माना जाता है। इसलिए, दुनिया की ओर मत देखो–पहले अपने भीतर देखो और वही करो। यदि अपने आप के मालिक हो, तो अधर्म मत करो और झूठ मत बोलो।"

मैंने कहा- "ठीक बात।"

काका ने भी सहमति जताई- "हाँ, तो और क्या!" ❑

प्रतिस्पर्द्धा

☰

आज का समय प्रतिस्पर्धा का है। जहाँ देखो, जिस ओर जाओ, हर जगह प्रतिस्पर्धा है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, परिवार-परिवार के बीच, जाति-जाति के भीतर, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय के बीच, समाज-समाज के बीच, हर जगह प्रतिस्पर्धा की परिस्थिति बन चुकी है।

रामकिशोर, जो दो बार प्रशासनिक प्रतियोगिता परीक्षा में असफल हो चुका है, अब निराश हो गया था। दरवाजे पर अकेले बैठे-बैठे वह मन ही मन सोच रहा है कि या तो वह समय के अनुरूप नहीं है, या समय ही उसके अनुकूल नहीं है। बी.ए. पास रामकिशोर यह भी सोच रहा है कि सरकारी नौकरी पाने का समय अब निकल चुका है। उम्र की सीमा पार हो चुकी है और जो एकमात्र विकल्प बचा था, प्रशासनिक प्रतियोगिता परीक्षा, जिसमें अधिकतम तीन बार बैठा जा सकता है, उसमें भी दो बार असफलता हाथ आई है। अब केवल एक मौका बचा है और उसमें भी शायद असफल हो जाऊंगा। अगर तीनों बार असफल हो गया, तो प्रशासनिक नौकरी की जो आस मन में थी, वह भी समाप्त हो जाएगी, फिर करूंगा क्या।

घर में पंद्रह बीघा जमीन तो है, लेकिन खेती का पेशा अब मौत के किनारे पहुँच चुका है। पहली बात की खेती की उचित व्यवस्था नहीं है, ऊपर से पढ़े-लिखे आदमी के लिए यह हंसी का विषय बन चुका है। जिस कृषि को देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ कहा जाता है, उसी को किसान और शासन दोनों ही तिरस्कार की दृष्टि से देख रहे हैं। ऐसे में वह वहाँ क्या करेगा।

रामकिशोर अपने जीवन से इतना निराश हो चुका है कि उसके मन से भविष्य की कल्पना मिटती जा रही है। न वह आगे कोई आशा देख पा रहा है, न अपने जीवन का कोई सार्थक रूप। जब उसने अपने ऊपर से नजर हटाकर समाज की ओर देखा, तो वहाँ भी वैसा ही दृश्य था जैसा अपने भीतर। तभी उसके मन में एक नया विचार जागा, जो बात खुद नहीं समझ पा रहा, उसे किसी और से क्यों न समझ ले। पर जैसे ही उसकी नजर दूसरों पर गई, मन में यह बात भी आई कि और लोग भी तो इस स्वभाव के हैं, अच्छा सोचने या समझने के बजाय अधूरा सोचते हैं और मौका मिलने पर नुकसान भी पहुँचा ही देते हैं। जब समाज के लोग ही ऐसे हो गए हैं, तो भला समाज से अच्छे किए जाने की कितनी उम्मीद की जा सकती है?

यकायक रामकिशोर की दृष्टि में एक दृश्य उमड़ पड़ा कि समाज तो एक समूह है, समूह में सबके स्वभाव और विचार एक जैसे हो कैसे सकते हैं। यह सच है कि कुछ लोग अवश्य दुष्ट स्वभाव के होते हैं, पर यह कहना सही नहीं होगा कि सभी एक जैसे ही हैं। क्योंकि दुष्ट स्वभाव वाले लोग भी होते हैं, और सज्जन स्वभाव वाले भी। यह भी अवश्य है कि जो लोग सद्गुणी हैं, वे संयमित जीवन जीते हैं और संयम से अपना आचरण बनाए रखते हैं, जबकि दुष्ट स्वभाव वाले लोग दिन-भर लोगों के बीच रहकर तरह-तरह की चाल और विचार से उन्हें विचलित करते रहते हैं।

सोचते-सोचते रामकिशोर का मन उस सीमा तक पहुँचा, जहाँ उसे सज्जन लोगों की छवि दिखाई देने लगी। अचानक उसकी दृष्टि गौरीनाथ मास्टर साहब पर पड़ी। गौरीनाथ मास्टर साहब हाई स्कूल के शिक्षक थे, जो छह वर्ष पहले सेवा-निवृत्त हो चुके थे। उनका परिवार इतना सुदृढ़ था कि उन्हें किसी बात की तनिक भी चिंता नहीं थी। जैसे उनका व्यवहार संतुलित था, वैसे ही परिवार के सदस्यों का भी था। वे संतुलित जीवन जी रहे थे।

गौरीनाथ मास्टर साहब के बारे में सोचते हुए रामकिशोर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वह उनके पास जाकर अपनी सारी बातें कह दे। बातें सुनने के बाद वे जो विचार देंगे, उनको सुनकर स्वयं भी सोचेगा कि उनके विचार जीवन के लिए कितने उपयोगी हैं और कितने अनुपयोगी। वह स्वयं तो स्नातक है, लेकिन सोलह

आने वैसा तो नहीं है जैसे कोई ऐसा व्यक्ति, जिसने कभी स्कूल-कॉलेज का चेहरा तक न देखा हो। रामकिशोर के मन ने तय कर लिया कि वह शाम को उनके पास जाएगा और अपनी सारी बातें कहकर आगे क्या करना उचित होगा, यह पूछेगा।

जब से रामकिशोर के मन में गौरीनाथ मास्टर साहब से मिलने का विचार आया, तभी से वह अपने जीवन की एक-एक उलझन पर ध्यान देकर सोचने लगा कि कौन-कौन सी बातें उनको कहना उचित रहेगा।

सूर्यास्त हो चुका था। जीवन से जुड़े अधिकांश विचार रामकिशोर के मन में आकार ले चुके थे। अचानक उसके मन में आया कि जो विचार अभी तक जागे हैं, वे तो केवल उसकी अपनी सोच के अनुरूप है, लेकिन जब गौरीनाथ मास्टर साहब से बातचीत शुरू होगी, तो जो बातें वे कहेंगे, उससे अपने विचारों का समाधान अपने आप हो जाएगा और कुछ नये विचार भी सामने आ सकते हैं।

परिवार में किसी को कुछ बताए बिना रामकिशोर ने अपनी पत्नी से कहा- "मैं गौरीनाथ मास्टर साहब के पास जा रहा हूँ, बातचीत में थोड़ी देर भी हो सकती है, इसलिए किसी तरह की चिंता मत करना।"

जैसे ही उसने कहा, पत्नी ने भी उत्तर दिया- "बहुत देर मत करना। रात का समय है, इसलिए समय पर लौट आने की कोशिश करना।"

पत्नी की बात सुनकर रामकिशोर बिना कुछ कहे दरवाजे से उठकर विदा हो गया।

गौरीनाथ मास्टर साहब के तीन बेटे और दो बेटियाँ थीं। दोनों बेटियाँ ससुराल में रहती थीं, लेकिन उनकी एक-एक संतान, एक बेटा और एक बेटी, गौरीनाथ अपने पास रखकर पढ़ा रहे थे। चारों बच्चे हाई स्कूल में पढ़ रहे थे। बड़े बेटे, यानी गौरीनाथ के ज्येष्ठ पुत्र, गाँव में ही रहते थे। वे खेती-बाड़ी से लेकर रिश्तेदारी और समाज के बीच अपने सभी दायित्व संभालते थे। छोटे दोनों भाई अपने-अपने परिवार के साथ बाहर रहते थे।

दरवाजे पर बैठे गौरीनाथ मास्टर साहब के बड़े बेटे शोभित, जो गाँव में

रहते थे, उनसे वे बातचीत कर रहे थे, तभी रामकिशोर पहुँच गया। दरवाजे पर पहुँचते ही रामकिशोर ने कहा- "प्रणाम, काका।" उसी तरह गौरीनाथ मास्टर साहब ने भी कहा- "आओ-आओ, रामकिशोर, खूब खुश रहो।"

दरवाजे के ओसारे पर एक बड़ी चौकी पर बिस्तर बिछा था, जिस पर सात-आठ आदमी आराम से बैठ सकते थे। उसी पर बैठे गौरीनाथ मास्टर साहब शोभित से बात कर रहे थे। उसी चौकी पर रामकिशोर को अपने पास बैठाते हुए गौरीनाथ ने पूछा- "परिवार का क्या हाल-चाल है, रामकिशोर?"

उत्तर देते हुए रामकिशोर बोला- "परिवार का हाल-चाल तो बहुत अच्छा है, लेकिन मैं ही उलझा हुआ हूँ।"

गौरीनाथ मास्टर साहब के मन में एक द्वंद्व उठा। यह द्वंद्व इस बात को लेकर था कि रामकिशोर स्वयं को परिवार से अलग मान रहा है, लेकिन उन्होंने इस पर कुछ नहीं कहा। केवल इतना बोले- "परिवार है तो सही, पर सबका स्वभाव एक जैसा नहीं होता और न ही सबका जीवन एक ही रंग में ढला होता है। परिवार के भीतर भी तरह-तरह के जीवन होते हैं।"

गौरीनाथ मास्टर साहब की बात सुनकर रामकिशोर ने मन ही मन सोचा कि शाम का समय है, धीरे-धीरे रात गहराती जाएगी, इसलिए अच्छा होगा कि जिस उद्देश्य से आया हूँ, उसी विषय में बातचीत शुरू कर दूँ। नहीं तो समय निकल जाएगा और मुख्य बाएं अधूरी रह जाएगी। यही सोचकर रामकिशोर बोला- "काका, कुछ विचार करने आया हूँ।"

"क्या विचार, बताओ?" गौरीनाथ मास्टर साहब ने पूछा।

रामकिशोर ने कहा- "काका, अब तक जीवन में जो सोचता आया, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। इसलिए अब मन में डर है कि अगर ऐसा ही चलता रहा, तो जीवन ही बेकार हो जाएगा।"

रामकिशोर की बात सुनकर गौरीनाथ मास्टर साहब ने मन में सोचा कि समय अनुकूल है। अनुकूल इसलिए कि जब तक मनुष्य के स्वयं का विचार प्रबल रहता है, तब तक वह दूसरों के विचार, चाहे वे कितने भी अच्छे या उपयुक्त हों, ग्रहण नहीं करना चाहता। लेकिन जब स्वयं के विचारों से असफलता मिलती

है, तब वह दूसरों की बात सुनने और मानने के लिए तैयार हो जाता है। रामकिशोर की स्थिति भी अभी ठीक ऐसी ही है।

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "रामकिशोर, असफल होने वाले केवल तुम ही नहीं हो। समझो कि समाज में अधिकांश लोग ऐसे ही हैं। इसलिए खुद को सही ढंग से पहचानो और जब सही दिशा में कदम बढ़ाओगे, तभी जीवन में आशा की किरण मिलेगी।"

गौरीनाथ मास्टर साहब की बात सुनते ही रामकिशोर के मन में एक नया विचार जागा। नव विचार के जागते ही उसने पूछा- "वह कैसे होगा, काका?"

गौरीनाथ मास्टर साहब ने कहा- "रामकिशोर, लोग अक्सर अपनी तुलना दूसरों से करते रहते हैं, और इस कारण उन्हें वह नहीं मिल पाता जिसकी उन्हें वास्तव में ज़रूरत है। यह दुनिया ऐसी ही है जहाँ अच्छे से अच्छे की संख्या भी अधिक है और औसत से औसत की संख्या भी कम नहीं, इसलिए लोग खुद को पहचान ही नहीं पाते कि वे वास्तव में क्या हैं।" ज़रूरत है कि इंसान यह जाने कि वह स्वयं क्या है, और इस बात को वह गहराई से जाने। जैसे ही कोई व्यक्ति अपने बारे में जानना शुरू करता है, वैसे ही वह अपने जीवन को भी पहचानने लगता है। जब वह अपने जीवन को, यानी अपनी क्रियाओं और अपने उद्देश्यों को जान लेता है, तभी वह नई दिशा में बढ़ना शुरू करता है और उसका आत्मज्ञान भी जागने लगता है। जब आत्मज्ञान जागने लगता है, तब एकाग्रता आती है। जितना अधिक वह एकाग्र होकर अपने अध्ययन में लगेगा, उतनी ही उसकी आत्मचेतना प्रबल होगी, और यही जीवन में सफलता की पहली सीढ़ी है।

गौरीनाथ मास्टर साहब की यह बात सुनकर रामकिशोर के मन में इस विचार का बीज पड़ा, जो अब तक के जीवन में कभी नहीं पड़ा था। शरीर तो धरती के समान है। जैसे धरती में जो भी बीज डालो, वैसा ही पौधा और पेड़ उगता है, वैसे ही मनुष्य का जीवन भी है।

रामकिशोर ने पूछा- "काका, यह कैसे समझा जाए?"

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "रामकिशोर, जीवन का हर एक दिन और दिन का हर एक क्षण देवतुल्य है। ज़रूरत है उसे पहचानने की। पूरे दिन में कौन

से कार्य में समय बीता और उस कार्य में कितना समय नए कार्य में, यानी किसी रचनात्मक कार्य में बीता, और कितना समय अपने व्यवहारिक क्रियाकलाप में बीता, यह परखना चाहिए। जितना समय नए कार्य में दिया, वही समय जीवन की सफलता की सीढ़ी पर चढ़ने के समान है।"

गहरी साँस छोड़ते हुए रामकिशोर बोला- "काका, यह परख कैसे होगी?"

रामकिशोर का प्रश्न सुनकर गौरीनाथ मास्टर साहब अपने मन की खुशी से मुस्कुरा उठे। मुस्कुराते हुए बोले- "रामकिशोर, जब अपने काम से संतोष मिलेगा और मन में प्रसन्नता आएगी, तब समझना कि तुम सफलता की सीढ़ी चढ़ रहे हो। प्रतिदिन, प्रतिक्षण मनुष्य सफल और असफल होता रहता है, जिसे सभी लोग महसूस नहीं कर पाते। जिसे यह समझने का ज्ञान हो जाता है, यानी सफलता और असफलता का अनुभव करने की समझ आ जाती है, वही अपनी सफलता और असफलता को पहचान पाता है। जब तुम यह समझने लगोगे, तभी जान पाओगे कि आज के जीवन में कितनी सफलता पाई और कितनी असफलता मिली।"

गौरीनाथ मास्टर साहब की बात रामकिशोर पूरी तरह नहीं समझ पाया, इसलिए बोला- "ज़रा स्पष्ट करके बताइए, काका।"

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "रामकिशोर, दुनिया की ओर देखने की आदत छोड़ो। जो अपने रास्ते, यानी चलने के मार्ग की ओर ध्यान देकर कदम बढ़ाता है, वह अपनी यात्रा पूरी कर लेता है, लेकिन जो आकाश की ओर या किसी दूसरी चीज की ओर नज़र डालते हुए चलता है, उसके पाँव में ठोकर लगती है और वह गिर भी पड़ता है। जब तुम खुद को पहचानते और समझते हुए राह चलोगे, तब न ठोकर खाने की संभावना रहेगी और न गिरने की।

तुम जानते हो, और सभी जानते हैं, कि मनुष्य के शरीर में मन होता है, बुद्धि होती है, विवेक होता है और आत्मा भी होती है। इन सब पर ध्यान रखते हुए जब कोई काम या विचार करोगे, तो मन में तृप्ति आएगी और वही तृप्ति सफलता है। जब इस तरह के जीवन में आगे बढ़ोगे, तब अपनी क्षमता में भी वृद्धि होगी और मन की खुशी भी बढ़ेगी।

जब तक यह प्राप्त नहीं होता, तब तक हमेशा दूसरों से कुछ पाने की इच्छा बनी रहती है। किसी से कुछ माँगना उतना उचित नहीं है जितना कि किसी को कुछ देना। सब जानते हैं, भजन की पंक्ति में भी गाया जाता है 'भिखारी सारी दुनिया, दाता एक राम'। वह 'राम' कौन है? अपने से अलग जिस राम पर तुम्हारा ध्यान है, वह भ्रम है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा राम है। तुम्हारी आत्मा क्या है? तुम्हारे विवेकपूर्ण विचार और तुम्हारे विवेकपूर्ण कर्म ही तुम्हारी आत्मा हैं।"

गौरीनाथ मास्टर साहब के गंभीर विचार सुनकर रामकिशोर ने चैन की साँस ली। साँस लेते ही जैसे उसका मन हल्का हो गया। अमावस्या के अँधेरे के बाद जैसे पूनम के चाँद की किरणें धरती पर उतरती हैं, वैसी ही उजास उसके भीतर उतरने लगी। रामकिशोर स्वयं में डूबने लगा। एक ओर मन की तृप्ति बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर यह एहसास भी होने लगा कि जिस दुनिया और जिस जीवन में अब तक वह जीता आया है, उससे अलग एक और दुनिया भी है और उसके अपने निवासी भी हैं।

रामकिशोर बोला- "काका, ऐसा लग रहा है कि मन का सब कुछ हल्का हो गया है और पूरा मन एकदम खाली हो गया है।"

रामकिशोर की बात सुनकर गौरीनाथ मास्टर साहब मन ही मन सोचने लगे कि ऐसा केवल रामकिशोर ही नहीं है, जिसके मन में कूड़ा-करकट, यानी अधूरे और अधकचरे विचार न भरे हों। समाज में ऐसे लोग अधिक हैं जिनका मन कूड़ा-करकट से भरा है। समाज की हालत भी ऐसी है कि वह दिन-भर इसी कूड़े-करकट को परोसता रहता है और अनाड़ी, अबूझ लोग उसे अपनाकर दिशाहीन चलते रहते हैं। जब मनुष्य के रूप में धरती पर जन्म लिए हैं, तब यह विचार कि अगर भगवान कृपा करेंगे तो अमुक चीज मिलेगी ही, सिवाय भ्रम के और कुछ भी नहीं है। भगवान तो पहले ही कृपा कर चुके हैं कि हमें मनुष्य का शरीर देकर धरती पर खड़ा किया है।

रामकिशोर बोला- "काका, दिन-भर कोई न कोई चिंता मन को जकड़े रहती है। एक चिंता मिटती है तो दूसरी आकर मन को जकड़ लेती है।"

रामकिशोर की बात सुनकर गौरीनाथ मास्टर साहब मन ही मन विचारने लगे तो उन्हें भी लगा कि यह केवल रामकिशोर ही नहीं, बल्कि अधिकांश लोगों के साथ होता है। इसे सामान्य जीवन कहा जा सकता है, लेकिन सामान्य जीवन से अलग एक और जीवन भी है जिसे विशेष जीवन कहा जाता है।

गंभीर होते हुए गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "रामकिशोर, जैसे तुमने चिंता की बात कही है, वैसे ही चिंतन भी है।"

'चिंता' और 'चिंतन' शब्द रामकिशोर को मालूम तो थे, लेकिन दोनों के बीच का अंतर उसने कभी ठीक से नहीं सोचा था, इसलिए दोनों उसे लगभग एक जैसे ही लगते थे। लेकिन जब यह बात गौरीनाथ मास्टर साहब के मुंह से निकली, तो उसके मन में भी जिज्ञासा जागी। इसलिए वह बोला- "काका, चिंता और चिंतन के बीच क्या अंतर है?"

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "रामकिशोर, बिना किसी उद्देश्य के सोचना, यानी बिना योजना के सोचते रहना, चिंता है, और योजनाबद्ध तरीके से सोचना, चिंतन है। यानी, यूं ही बेवजह कोई-न-कोई विचार मन में उठाकर मन को उसी के पीछे लगाए रखना, चिंता का कारण है। लेकिन जब जीवन का कोई उद्देश्य बनाकर योजनाबद्ध तरीके से उसके बारे में सोचते और विचार करते हैं, तो वह चिंतन होता है। एक ही तरह का काम करना, चिंता भी हो सकता है और चिंतन भी।"

गौरीनाथ मास्टर साहब की बात रामकिशोर के मन में स्पष्ट रूप से नहीं बैठी। इसलिए वह बोला- "काका, इसे ज़रा अच्छे से समझाइए।"

गौरीनाथ मास्टर साहब ने कहा- "महाभारत की कथा और रामायण की कथा तो जानते हो?"

बीच में रामकिशोर ने कहा- "हाँ।"

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- "पहले महाभारत की कथा पर नज़र डालो। कौरव और पांडव के बीच जो युद्ध हुआ, उसमें लाखों-करोड़ों सैनिक मारे गए। पांडवों के योद्धा अर्जुन थे, जिन्होंने कौरवों के लाखों की सेना का संहार किया।"

रामकिशोर बोला- "हाँ, वह तो अर्जुन ने किया।"

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- “यह तो तुम भी जानते हो कि कोई मनुष्य यदि एक भी हत्या करता है तो वह पाप का भागी बनता है और नरक जाता है, लेकिन अर्जुन के साथ ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने इतनी हत्याएँ कीं, फिर भी वे स्वर्ग गए। यह अंतर समझना ही चिंता और चिंतन का अंतर समझना है। किन परिस्थितियों में चिंतन चिंता बन जाता है और चिंता चिंतन बन जाती है, इसकी बारीकी को अच्छी तरह समझना ज़रूरी है।”

रामकिशोर के मन में जैसे नई ज्योति का प्रकाश फैल गया। इससे मन का बोझ हल्का हुआ और उसका हृदय उसी तरह खिल उठा जैसे कमल की पंखुड़ियाँ खिल उठती हैं। वह बोला- “काका, आपने रामायण की चर्चा करने की भी बात कही थी?”

गौरीनाथ मास्टर साहब बोले- “रामकिशोर, राम के सबसे बड़े भक्त हनुमान थे। उन्होंने लंका में कितनी हत्याएँ कीं, यह बात भी किसी से छिपी हुई नहीं है, लेकिन फिर भी वे हत्यारे नहीं कहलाए। यही है चिंतन और चिंता का अंतर। अगर तुम्हें अपने जीवन से प्रेम है तो अपने आप को जानने की कोशिश करो। देहधारी मनुष्य में देवताओं से अधिक शक्ति है। यह तो जानते ही हो कि मनुष्य का शरीर पाने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं।” ❑

शिष्टाचार

☰

एक कहावत है कि “जहाँ पैसा ज़्यादा होता है, वहाँ नाच भी ज़्यादा होता है।” लेकिन यह भी उतना ही सच है कि जहाँ कवि-कथाकार अधिक होते हैं, वहाँ नाच-तमाशा न हो, ऐसा भी नहीं है। बल्कि यह भी होता है। आदिकाल से ही मिथिला की धरती कवि-कथाकारों को जन्म देती रही है, आज भी दे रही है और भविष्य में भी देती रहेगी। प्राचीन मिथिला, जिसकी सीमाएँ एक निश्चित भौगोलिक परिधि में मानी जाती थीं, अब विस्तृत हो गई हैं। आज तो स्थिति यह है कि भारत ही नहीं, अन्य देशों में भी मैथिल (मिथिला के निवासी) नौकरी-चाकरी के लिए इस तरह पहुँच चुके हैं कि वे देश के कोने-कोने और विदेशों तक फैल गए हैं। जहाँ भी एक ही मिट्टी-पानी के लोग इकट्ठा होते हैं, वहाँ वे अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति और अपने व्यवहार को स्थापित करने का प्रयास अवश्य करते हैं।

दिल्ली में मैथिल समाज ने एक भाषा-साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन किया। तीन दिन का कार्यक्रम तय किया गया, जिसमें स्थानीय यानी दिल्ली में रहने वाले मैथिली साहित्यकारों के साथ-साथ मिथिला के साहित्यकारों को भी आमंत्रित किया गया। इसी कार्यक्रम में रामसेवक भैया को भी बुलाया गया। रामसेवक भैया न तो गीतकार हैं, न गायक, लेकिन कथा, उपन्यास और कविता की रचनाओं के कारण वे कथाकार, उपन्यासकार और कवि के रूप में मान्य हैं। दिल्ली के उसी कार्यक्रम में उन्हें भी आमंत्रित किया गया था, और दिल्ली आने-जाने का ट्रेन का टिकट भी कार्यक्रम से पाँच दिन पहले भेज दिया गया था।

एक तो साहित्यिक कार्यक्रम का आकर्षण, दूसरे भाषा और साहित्य की उन्नति देखकर, रामसेवक भैया ने खुशी-खुशी कार्यक्रम में भाग लेने का निश्चय कर लिया। संयोग भी अच्छा रहा। संयोग अच्छा यह था कि उनके साथ जाने वाले एक मित्र और उस मित्र के साथ जाने वाले व्यक्ति का टिकट भी साथ ही आ गया। कार्यक्रम से एक दिन पूर्व दिल्ली पहुँचने का टिकट था और कार्यक्रम समाप्त होने के एक दिन बाद वापसी का टिकट।

रेल विभाग में पहले की अपेक्षा कुछ सुधार भी हुए हैं। जहाँ पहले दिल्ली पहुँचने के लिए तीन-चार जगह ट्रेन बदलनी पड़ती थी, वहीं अब एक ही बार ट्रेन में बैठकर दिल्ली पहुँचना आसान हो गया है। दिल्ली के साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम से पाँच घंटे पहले रामसेवक भैया दिल्ली पहुँच गए। उम्रदराज होने के कारण यात्रा की थकान तो थी ही, चौबीस-पच्चीस घंटे ट्रेन में बिताने से यह और बढ़ गई थी, लेकिन मन का उत्साह इतना प्रबल था कि थकान महसूस ही नहीं हुई।

कार्यक्रम के आयोजकों ने इतनी अच्छी व्यवस्था की थी कि किसी को किसी प्रकार की असुविधा न हो। कार्यक्रम स्थल पर पहुँचकर रामसेवक भैया ने पहले स्नान किया। वैसे भी स्नान से थकान कुछ कम हो जाती है, और फिर जब नए-नए लोगों के साथ-साथ वे लोग भी मिले, जिनसे दस-बीस वर्ष पहले मुलाकात हुई थी, तो मन की थकान भी पूरी तरह मिट गई।

तीन दिनों का कार्यक्रम छह सत्रों में विभाजित था, यानी हर दिन दो-दो सत्र। पहले दिन पहले सत्र का विषय था 'मिथिला का इतिहास' और दूसरे सत्र का विषय था 'मिथिला की भौगोलिक संरचना'। दूसरे दिन 'मिथिला का जीवन दर्शन' और 'मिथिला का समाज' पर चर्चा हुई। तीसरे दिन 'मिथिला की कला' और 'मिथिला के सांस्कृतिक नृत्य गान' पर कार्यक्रम हुआ।

रामसेवक भैया से मिलने कई रिश्तेदारों के साथ-साथ गाँव-मोहल्ले के परिचित लोग भी आए। वे घंटों उनके साथ बैठे रहे। कार्यक्रम के अनुसार रामसेवक भैया ने अपनी उपस्थिति सभी सत्रों में दर्ज कराई। कार्यक्रम बहुत सफल रहा और मैथिल समाज ने आपसी विचार-विमर्श के बाद तय किया कि

ऐसे आयोजन हर साल होंगे।

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद रामसेवक भैया ने गाँव लौटने के लिए निर्धारित समय पर ट्रेन पकड़ी और समय पर घर पहुँच गए।

कार्यक्रम के आठ दिन बाद रामसेवक भैया को दिल्ली से समधियौते का फोन आया। समधियौते यानी भतीजे के ससुर सुकदेव। सुकदेव की बहन की शादी रामसेवक भैया के भतीजे रामखेलावन से हुई थी, यानी सुकदेव की बहन उनकी भतीजवधू हैं। सुकदेव इस कार्यक्रम में शामिल नहीं हो पाए थे।

पंद्रह वर्ष पहले सुकदेव दिल्ली गया था। पढ़ाई-लिखाई में वह लगभग अनपढ़ ही था, बस नाम और गाँव लिख लेना जानता था, लेकिन शरीर से जितना हृष्ट-पुष्ट था, काम करने में भी उतना ही तेज-तर्रार। उसने ड्राइविंग सीखी थी। गाँव से जाने के बाद सुकदेव ने एक व्यापारी के यहाँ गाड़ी चलाना शुरू किया। उस सेठ के पास कई गाड़ियाँ थीं। सेठ की एक गाड़ी पर सुकदेव को चढ़ा दिया गया। नौकरी शुरू करने के छह महीने बाद ही अच्छा ड्राइवर बन जाने के कारण सुकदेव सेठ के निजी वाहन का ड्राइवर बन गया। मालिक के परिवार का ड्राइवर बनने से उसकी इज़्ज़त और मान-प्रतिष्ठा अन्य ड्राइवरों से कहीं अधिक हो गई। सेठ भी पैसे वाले थे, जिससे सुकदेव की आमदनी भी अन्य ड्राइवरों की तुलना में काफी बढ़ गई। आमतौर पर यह देखा जाता है कि अधिकांश लोग जो गाँव से दिल्ली या अन्य शहरों में नौकरी करने जाते हैं, वे वहाँ या तो मकान खरीद लेते हैं या बनवा लेते हैं। सुकदेव ने भी एक कट्ठा जमीन खरीदकर अपना दो-मंजिला मकान बना लिया था।

रामसेवक भैया जब गाँव घूमकर लौट आए, तो उसके आठ दिन बाद सुकदेव ने फोन किया। अब तो मोबाइल का ज़माना आ चुका था, हर व्यक्ति के पास मोबाइल हो गया था। संयोग ऐसा हुआ कि सुकदेव को रामसेवक भैया का मोबाइल नंबर नहीं पता था, तो उसने उनके भतीजे के नंबर पर फोन किया। भतीजा, यानी रामखेलावन, उस समय घर पर नहीं था, वह मधुबनी गया हुआ था। इसलिए रामखेलावन ने सुकदेव से कहा- “अभी मैं मधुबनी में हूँ, तो अगर चाहो तो चाचाजी का मोबाइल नंबर दे देता हूँ, नहीं तो जब मैं घर लौटूँगा, तब

आपकी उनसे बात करा दूँगा।”

नवीन जानकारी मिलने पर व्यक्ति का उत्साह बढ़ ही जाता है। उसी उत्साह में सुकदेव ने रामखेलावन से कह दिया- “रामसेवक काका दिल्ली आए थे और उन्होंने मुझसे मुलाकात ही नहीं की।”

सुकदेव की बात सुनकर रामखेलावन कुछ नहीं बोला। उसने मोबाइल बंद कर लिया और अपने काम में लग गया। शाम को रामखेलावन मधुबनी से लौटकर घर आया। पूरे दिन के थके होने के कारण उसने पहले नहा कर जलपान किया। जलपान के बाद जब मन कुछ हल्का हुआ, तो उसने सोचा कि अब चाचाजी को सुकदेव का समाचार बता दे। उसने वैसा ही किया।

रामसेवक भैया दरवाजे पर बैठे अनूपलाल से दिल्ली के कार्यक्रम की चर्चा कर रहे थे। रामखेलावन को देखते ही रामसेवक भैया ने पूछा- “कोर्ट का काम निपट गया क्या?”

रामखेलावन बोला- “हाँ।”

रामखेलावन के मुँह से ‘हाँ’ सुनकर रामसेवक भैया ने आगे कुछ नहीं पूछा और फिर अनूपलाल से बातचीत करने लगे। बीच में रामखेलावन ने कहा,

“चाचाजी, जब मैं कोर्ट का काम कर रहा था, तब सुकदेव ने फोन पर कहा कि रामसेवक चाचा दिल्ली आए थे और मुझसे मुलाकात नहीं की।”

रामखेलावन के मुँह से सुकदेव का समाचार सुनते ही रामसेवक भैया को जैसे पूरे शरीर में आग लग गई। क्रोध इतना प्रबल हो उठा कि यदि सुकदेव सामने होता तो शायद उसका गला दबा देते। लेकिन चूँकि वह सामने नहीं था, इसलिए जैसे समुद्र मंथन के बाद महादेव ने विष पी लिया था, वैसे ही रामसेवक भैया ने क्रोध का विष मन ही मन पी लिया। फिर भी, उस विष की ज्वाला जैसे महादेव के भीतर जलती रही थी, वैसे ही रामसेवक भैया के मन में भी जलने लगी।

अनूपलाल से रामसेवक भैया बोले- “अनूप, लोग एक से एक बेशर्म होते हैं।”

अनूपलाल को कुछ समझ में नहीं आया, इसलिए उन्होंने जिज्ञासा से पूछा- “क्या बात है, भैया?”

रामसेवक भैया के मन में क्रोध की प्रचंड ज्वाला तो धधक रही थी, लेकिन जिस पर यह ज्वाला उठी थी, वह सामने नहीं था। इसलिए अपने क्रोध को मन में दबाकर वे बोले- “अनूप, जिसके बारे में रामखेलावन ने कहा, उसे तुम शायद नहीं जानते हो, इसलिए पहले उसका परिचय दे देता हूँ। वह, यानी सुकदेव, रामखेलावन का ससुराल पक्ष का रिश्तेदार है। पढ़ाई-लिखाई में लगभग अनपढ़ है। गाँव में आवारागर्दी करता रहता था। अपने ममियौते भाई के साथ दिल्ली गया। ममियौते भाई ने अपने खर्च से उसे गाड़ी चलाना, यानी ड्राइविंग, सिखा दी। अब वह एक बड़े व्यापारी के यहाँ ड्राइवरी करता है। आजकल का समय कुछ ऐसा हो गया है कि जिस चोरी-बेईमानी को लोग पहले पाप समझते थे, वही अब धर्म बन गया है। इस पाप से कोई भी लगभग अछूता नहीं है। उसी तथाकथित धर्म, यानी अधर्म के बल पर सुकदेव ने दिल्ली में अपना दो-मंज़िला मकान बना लिया है। यह मकान दस कमरों का है। एक कमरे में वह अपनी पत्नी के साथ रहता है और बाकी सब किराए पर लगा रखा है, जिससे पच्चीस-तीस हज़ार रुपये महीनें की आमदनी हो रही है। पैसे की अच्छी खासी आमदनी हो गई है। यानी पहला स्रोत उसकी नौकरी का वेतन है, दूसरा अतिरिक्त आय और तीसरा घर का किराया। जिस परिवार ने हमेशा अभाव और गरीबी में जीवन बिताया हो, उसमें जब धन की आवक होती है तो मन का स्वभाव बदलना तय है। यही बदलाव सुकदेव में भी आ गया है।”

बात करते-करते रामसेवक भैया ने अनूपलाल को सब कुछ बता दिया, लेकिन मन में जो क्रोध का ताप चढ़ा था, वह अब भी भीतर ही भीतर जलता रहा। उन्होंने रामखेलावन से कहा- “बौआ, ज़रा सुकदेव को फोन मिलाओ।”

जैसे ही रामसेवक भैया ने कहा, रामखेलावन ने सुकदेव को फोन मिलाया और बोला- “घर आ गए हैं, चाचाजी से बात करिए।”

सुकदेव को यह मालूम नहीं था कि चाचाजी उसकी बात सुनकर पहले से ही आग-बबूला हैं, इसलिए उसने सीधे कहा- “चाचाजी, आप दिल्ली आए और मेरे यहाँ नहीं आए!”

जैसे ही सुकदेव ने यह कहा, रामसेवक भैया ने जवाब दिया,

"बौआ, शिष्टाचार किसे कहते हैं, यह जानते हो?"

पढ़ा-लिखा सुकदेव होता तो शिष्टाचार के बारे में कुछ कहता, लेकिन ऐसा था नहीं, इसलिए चुप रहा। जैसे किसी घर में चोरी होने के बाद घरवालों के तन-बदन में आग लग जाती है, वैसे ही रामसेवक भैया को भी लगा। पहले से ही सुकदेव पर उनका क्रोध चढ़ा हुआ था, और अब सामने, यानी फोन पर आमने-सामने होने से यह और बढ़ गया। उन्होंने कहा- "सुकदेव, तुम्हें अब तक इतना भी ज्ञान नहीं हुआ कि समझ सको कि मैं गाँव से दिल्ली एक सामाजिक कार्यक्रम में गया था। वहाँ समय निर्धारित था। समयानुसार पहुँचना और उस कार्यक्रम में भाग लेना था, और तुम यह कैसी बातें कर रहे हो! तुम्हें तो यह भी शर्म नहीं आई कि जैसे ही मैं पहुँचा, तुम्हें इसकी जानकारी जरूर मिली होगी, क्योंकि कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार अच्छे से हुआ था। तब तुम्हें वहाँ पहुँचकर मुझसे मिलना चाहिए था।"

जिसका जैसा बौद्धिक स्तर होता है, उसका विचार और व्यवहार भी वैसा ही होता है। सुकदेव ने भी अपने बौद्धिक स्तर के अनुसार ही कहा- "चाचाजी, समय के अभाव के कारण नहीं आ सका।"

सुकदेव की बात सुनते ही रामसेवक भैया का क्रोध और भड़क गया। वे बोले- "हम इतनी उम्र में गाँव से इतनी दूर कार्यक्रम में भाग लेने गए, और तुम, जो पास ही थे, आ नहीं सके।"

रामसेवक भैया के मन में तो यह स्पष्ट था कि शिष्टाचार क्या है और शिष्टाचारी व्यक्ति में किस प्रकार के गुण आ जाते हैं, यहाँ तक कि शिष्टाचार आने के बाद मनुष्य में देवत्व की शक्ति तक आ जाती है, लेकिन उन्होंने यह इसलिए नहीं कहा कि भैंस के आगे वीणा बजाने जैसा परिणाम होता।

सुकदेव बोला- "चाचाजी, आपको हम क्या कहें, आप तो खुद जानते हैं कि जो दूसरों के अधीन है, उसका जीवन कैसा होता है।"

सुकदेव की यह बात सुनकर रामसेवक भैया के मन का ज्वालामुखी, जो फट चुका था, अचानक परवश व्यक्ति का जीवन देखकर शांत हो गया। लेकिन सुकदेव की धृष्ट वाणी से मन का संताप थोड़ा-बहुत फिर भी जग गया। वे बोले-

"बौआ सुकदेव, सोए खट पर और सपना देखे नौ लाख का, ऐसे सपने को मन से निकालो और यह सीखने की कोशिश करो कि किस तरह के व्यक्ति के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए।"

रामसेवक भैया की बातों को सुनकर सुकदेव के मन पर जैसे अस्सी मन पानी पड़ गया। उसकी आवाज कांपने लगी। थरथराते हुए बोला, "चाचाजी, आपको हम क्या कहें, भूल-चूक हो गई।"

रामसेवक भैया कुछ नहीं बोले। ❑

जमुनिया

☰

मोहनपुर गाँव के समाज के मुँह से तरह-तरह के विचार जमुनिया के संबंध में निकलने लगे- "जिसमें संकल्प लेने की शक्ति है, वह सफल होकर ही रहेगा।"

"महिला होते हुए भी जमुनिया ने पुरुषों के कान काट दिए।"

"जिसमें पौरुष है, वही पुरुष है। जिसे लोग मर्द या औरत समझते हैं, वह तो केवल लैंगिक भेद है।"

"अगर भगवान परिवार में जमुनिया जैसी बेटी दे दें, तो वह बेटे से सात गुना अच्छा।"

गाँव है, सबके अपने-अपने विचार हैं और विचार व्यक्त करने का मुँह भी तो है ही।

जमुनिया का जन्म मोहनपुर गाँव के उस परिवार में हुआ है जो पूर्णतः मज़दूर परिवार है। संपत्ति के नाम पर अनूपलाल, यानी जमुनिया के पिता, के पास आठ धूर घराड़ी का परचा मात्र है। घर–आँगन छोड़कर बाकी एक धूर भी जमीन नहीं है।

संयोग ऐसा है कि गाँव के चौराहे के बगल में घर होने के कारण सड़क की अधिकांश ज़मीन का उपयोग वे करते हैं, जिससे अनूपलाल के परिवार को कोई असुविधा नहीं होती। जाड़न–काठी रखना, गोबर–गोइठा बनाना, गाय–बैल को बाँधना, सब्ज़ियों की लत्तियाँ–फत्तियाँ लगाना, यह सब सड़क की ज़मीन पर ही करते हैं।

तीन साल पहले अनूपलाल ने जमुनिया की शादी अपने गाँव के बगल के गाँव रोहितपुर में की।

समाज में जाति–बिरादरी का बंधन है, इसलिए जमुनिया का विवाह अपनी ही जाति में सामाजिक व्यवहार के अनुकूल किया गया। न तो एक पैसा दहेज दिया गया और न ही बेटी के नाम पर एक पैसा वरपक्ष से लिया गया।

यहाँ एक प्रश्न उठता है। यह कि हमारी दृष्टि में ऐसी धारणा बन गई है कि दहेज केवल वरपक्ष लेता है और कन्यापक्ष देता है। लेकिन समाज का जो व्यवहारिक इतिहास रहा है, वह दोनों तरफ का रहा है। अर्थात, वरपक्ष भी दहेज लेता रहा है और कन्यापक्ष भी। आज के परिवेश में कन्या–पक्ष द्वारा दहेज लेने की प्रथा घट अवश्य रही है, परंतु पूर्ण रूप से समाज में समाप्त नहीं हुई है। समाज की कुछ जातियों में अब भी यह प्रथा मज़बूती से जीवित है। विशेषकर वहाँ, जहाँ लड़कों की संख्या अधिक है और लड़कियों की संख्या कम।

खैर, जो भी हो, जमुनिया के विवाह में अनूपलाल ने एक पैसा भी नहीं लिया।

साधारण परिवारों में जो व्यवहार होता है, वही हुआ। जिस प्रकार कन्यापक्ष वर को पाँचों जोड़े नये वस्त्र पहनाकर विदा करता है, उसी प्रकार कन्या को भी वरपक्ष से नये वस्त्र पहनाकर पीहर से ससुराल की यात्रा कराई जाती है। साथ ही, बेटी–जमाई के खाने–पीने के लिए थाली–लोटा और रसोई के लिए बर्तन वगैरह भी दिये जाते हैं। यह व्यवहार आज का ही नहीं है, बहुत पहले से होता चला आया है।

साठ–उसार के समय में पौती–पेटारी की परंपरा भी थी, जो अब धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। पौती–पेटारी की जगह अब ट्रंक–बक्से का चलन हो गया है।

जमुनिया के विवाह में अनूपलाल ने सात जन बरातियों की माँग की थी। जिस तरह सात बरातियों की माँग की, उसी तरह वरपक्ष ने भी सात लोग संग ही बारात आए।

आज का परिवेश बदल चुका है। अब, जैसे गाड़ियों–सवारियों की संख्या

बढ़ गई है, वैसे ही बरातियों की संख्या भी बढ़ गई है। जो भी हो, जमुनिया के विवाह में केवल सात बाराती आए थे।

एक और बदलाव यह था कि अब प्रायः एक पहरी बाराती होते हैं, अर्थात शाम को बराती आते हैं, खाते–पीते हैं और रात में ही लौट जाते हैं। लेकिन जमुनिया के विवाह में ऐसा नहीं हुआ। जिस दिन बराती आये, उसके तीसरे दिन लौटे। दूसरे दिन मर्याद हुई थी।

खेतिहर परिवार में जन्मी जमुनिया दस ग्यारह वर्ष की आयु से ही माँ बाप के साथ खेत बोने में जुटने लगी थी। इसी कारण खेती किसानी का अधिकांश कौशल उसे भलीभाँति आ गया था।

अनूपलाल की तरह श्यामवर्ण में रंगी जमुनिया पके हुए जामुन जैसी दिखती थी। गठीला शरीर, पुष्ट चेहरा और गोल चपटा मुख ऐसा था कि उसका साँवला रंग कृष्ण से मिलता जुलता लगता। काम करने में वह पुरुषों से तनिक भी कम नहीं थी। कई लोगों का तो कहना था कि जमुनिया के आगे पुरुष भी उन्नीस पड़ जाते हैं।

समाज में आदिकाल से यह धारणा चली आ रही है कि जिसके पास जितनी क्षमता और परिश्रम की लय होगी, उसकी माँग उतनी ही अधिक होगी। परिणाम यह हुआ कि जहाँ पुरुष कभी कभी बेरोजगार हो जाते थे, वहाँ जमुनिया को एक दिन भी खाली बैठने का अवसर नहीं मिलता था।

जमुनिया के विवाह से पहले तक अनूपलाल प्रतिदिन तीन मजदूरी कराते थे। दोनों पति पत्नी और बेटी खेतों में मजदूरी करते थे। इसी कारण परिवार में खाने पीने की कमी कभी नहीं होती थी, जैसा कि अन्य परिवारों में अक्सर हो जाया करता था।

आज समाज में कुछ बदलाव अवश्य आए हैं और बाल विवाह की संख्या घट गई है, परंतु यह पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। थोड़ी बहुत परंपरा अब भी जारी है।

अनूपलाल के दो संतानें थीं। बड़ी बेटी जमुनिया और उससे दो वर्ष छोटा बेटा तेतरा। जमुनिया से पहले भी एक संतान हुई थी, लेकिन जन्म के छह माह

बाद ही वह चल बसी। पहली संतान की मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद जमुनिया का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद तेतरा पैदा हुआ। उसके बाद और कोई संतान नहीं हुई। दंपति ने कई बार झाड़ फूँक करवाई, अनेक मन्नतें और अनुष्ठान किए, किंतु लाख प्रयास के बाद भी तीसरी संतान नहीं हुई।

सत्रह वर्ष की आयु में जमुनिया का विवाह हुआ। हालाँकि उम्र में सत्रह वर्ष की थी, परंतु दिखने में बारह तेरह वर्ष की प्रतीत होती थी। मोहनपुर से दो कोस दूर विष्णुपुर गाँव में मनचन के साथ उसका विवाह हुआ।

विवाह के पूरे एक वर्ष तक मनचन का परिवार पूर्ण शांति में रहा। जमुनिया भी घर आँगन के कामकाज में पूरी तरह रम गई। रसोई और भोजन बनाने तक सभी काम संभालती रही। परिवार में एक बछड़ा था, जिसकी देखभाल मनचन स्वयं करता था।

एक साल बाद एक दिन जमुनिया अपने आप सास से बोली- “माँ, मैं भी काम करने जाऊँगी।”

कमानेवाले इंसान में यह स्वभाव आ ही जाता है कि उसे बैठना अच्छा नहीं लगता। वही हुआ, दूसरे दिन से जमुनिया भी काम पर जाने लगी, यानी मजदूरी करने लगी।

बारह–तेरह साल की उम्र से ही मनचन गाँजा पीता आ रहा था। बाद में जब आमदनी बढ़ी, खासकर जमुनिया की मजदूरी की कमाई से, तो मनचन ने गाँजे के साथ ताड़ी पीना भी शुरू कर दिया। सुबह से लेकर रात में सोने तक वह नशे में डूबा रहता। नशे की वजह से स्वाभाविक ही काम करने में उसकी रुचि कम होती चली गई।

वैसे भी नशे की अपनी-अपनी प्रकृति होती है। शराब का नशा ऐसा भी होता है जो श्रम की शक्ति बढ़ा दे, काम करने का जोश जगाए। लेकिन ताड़ी, भाँग और गाँजा जैसे नशे ऐसे हैं जो आदमी को काम से मुँह मोड़ देते हैं। मनचन इन्हीं नशों का आदी था, इसलिए खेती-बारी में उसका मन ही कम लगता और खाने-पीने, खासकर मछली-माँस की ओर उसका मन ज्यादा खिंचने लगा।

हर रोज रात को आठ-नौ बजे मनचन नशे में धुत ताड़ी पीकर लौटता।

रास्ते में जिसे-तिसे गालियाँ देता और घर पहुँचते ही जमुनिया को गालियों के साथ मारपीट भी करने लगता।

कुछ दिन तक तो जमुनिया ने उसकी गालियाँ और मारपीट सह ली, लेकिन पति का रोज-रोज का रवैया देखकर उसने मन ही मन ठान लिया कि अगर सहती रही तो सारी जिंदगी यही सहना पड़ेगा। जीवन के प्रति आशा ने उसके भीतर साहस जगाया। जमुनिया के मन ने गवाही दी कि अगर भगवान ने उसका जन्म गरीब परिवार में ही दिया है, इसका यह मतलब नहीं कि वह उम्र भर गालियाँ सुनती और मार खाती रहे। वह जानती थी कि वह गरीब है, मेहनत करती है और गुज़र-बसर करती है—तो कहीं भी रह सकती है।

अचानक जमुनिया के भीतर अपनी शक्ति के प्रति विश्वास जागा। विश्वास जागते ही उसने ठान लिया कि आज से अगर पति ने एक भी गाली दी तो जवाब देगी। अगर मारेगा तो वह भी मारेगी। वह कोई गाय-भैंस नहीं है जिसे दूध दुहने के बाद भी लाठी से पीटा जाए।

अचानक जमुनिया के मन में अपने प्रति, यानी अपनी शक्ति के बल पर विश्वास जग गया। विश्वास जगते ही जमुनिया ने निश्चय कर लिया कि अगर यहाँ, ससुराल में पति गाली-गलौज करेगा तो वह अपने मायके चली जाएगी, लेकिन गाली-गलौज की जिंदगी नहीं जीएगी।

समय अपनी गति से चलता रहा। इस तरह जमुनिया को ससुराल में बसे तीन साल बीत गए और एक बेटा भी हुआ।

अपनी रोज़मर्रा की आदत के अनुसार मनचन ताड़ी पीकर नशे में घर आया और जमुनिया को बेवजह गालियाँ देने लगा। उस समय जमुनिया खाना बना रही थी, और बच्चे को चूल्हे से थोड़ा हटाकर चटाई पर सुला दिया था। शुरू की दो-तीन गालियाँ जमुनिया ने सह लीं, लेकिन फिर उसने भी गालियों का जवाब गालियों से देना शुरू कर दिया।

जमुनिया के मुँह से गालियाँ सुनकर मनचन को ऐसा लगा मानो उसकी इज्जत जाती रही हो। मन में और भी अधिक क्रोध भर उठा। अक्सर होता भी यही है कि जब किसी को अपनी इज्जत लुटती दिखती है तो उसका क्रोध और

प्रबल हो जाता है।

पति की गालियों का जवाब जमुनिया बार-बार देने लगी। जैसे-जैसे जमुनिया जवाब देती गई, वैसे-वैसे मनचन का गुस्सा बढ़ता गया। जब तक पत्नी पति की रौब में रहती है तब तक वह चुप्पी साधे रखता है, लेकिन जब पत्नी का मुँह खुल जाता है तो वह उससे बर्दाश्त नहीं होता है।

गाली-गलौज करते-करते मनचन ने ओसारे पर रखी पीढ़ी उठाई और जमुनिया के सिर पर दे मारी। चोट से जमुनिया का सिर फट गया और खून बहने लगा। पत्नी के सिर से बहते खून को देखकर मनचन आँगन से बाहर निकल गया।

एक तो सिर की चोट से घायल जमुनिया और ऊपर से खून की धार देखकर और भी सहम गई। उसे याद आया कि सिंदूर लगाने से खून रुक जाता है। उसने वही किया। सिंदूर लगाते ही थोड़ी देर बाद खून बंद हो गया।

खून रुकने के बाद जमुनिया ने बेटे कमला को गोद में लिया और मायके के लिए चल पड़ी। मनचन ने भी जमुनिया को जाते देखा, मगर गुस्से में इतना पागल था कि एक शब्द भी नहीं बोला।

रात के खाने-पीने के समय तक जमुनिया मायके पहुँच गई और सारी बातें माँ-बाप को कह सुनाई।

बेटी की बात सुनकर अनूपलाल तो कुछ नहीं बोले, लेकिन माँ इधर-उधर दामाद को कोसने लगी। मायके आने के बाद जमुनिया का साहस और भी बढ़ गया।

दूसरे दिन मनचन ससुराल आया और ससुर से अपनी पत्नी को विदा करने की माँग की। जमुनिया भी सामने ही थी। अनूपलाल तो चुप रहे, लेकिन जमुनिया सिंह की तरह गरजकर बोली- “निकलो यहां से रे जनमपिट्ठा! नहीं भागोगे तो खप्पड़ से तुम्हारा सर फोड़ दूँगी।”

पत्नी की गाली सुनकर मनचन मुँह बंद किए रहा। लेकिन जमुनिया का क्रोध और भी बढ़ता गया। पुनः जमुनिया बोली- “ जाओगे कि नहीं जाओगे यहां से, खुद मेहनत करके गुजर करती हूँ, तेरी गाली और मार क्यों सहूं?”

पत्नी का जवाब सुनकर मनचन उठकर चला गया।

समय अपनी गति से बढ़ता रहा। दिन महीने में बदलते गए और महीने सालों में। कमला चार साल का हो गया। एक तो मायका और दूसरी मेहनती जमुनिया, दोनों होने से वह दिन-रात मेहनत करती रही। परिवार का जो सूत्र होता है, एक ओर संतान, दूसरी ओर माता-पिता, दादा-दादी, उसी अनुरूप जमुनिया ने खुद को स्थापित किया।

जब जमुनिया अपने बारे में सोचती तो साफ दिखाई देता कि समाज में बहुत-सी महिलाएँ ऐसी भी रही हैं जिन्होंने बाल-विधवा का जीवन जिया है। केवल इतना ही नहीं, कई महिलाएँ ऐसी भी रही हैं जिनके पति जटिल रोग से पीड़ित होकर जीवन बिताते रहे और पत्नी उनकी सेवा करती रही। एक-एक ऐतिहासिक घटना जमुनिया के मन को जितना कठोर बनाती गई, उतना ही उसमें पौरुष भाव जागता गया।

जमुनिया चार साल बीतने के बाद पाँचवें साल में प्रवेश करते ही कमला का नाम स्कूल में लिखवा आई। खुद तो जमुनिया पढ़ी-लिखी नहीं थी, लेकिन बेटे पर खूब ध्यान देती रही। एक साल बीतने के बाद कमला की प्रतिभा चमक उठी। कमला अपनी कक्षा में प्रथम स्थान पाने लगा। बेटे को पढ़ते-लिखते देखकर जमुनिया परिवार के साथ-साथ बेटे पर और विशेष ध्यान देने लगी।

लोअर प्राइमरी स्कूल से कमला ने मिडिल स्कूल में प्रवेश लिया। मिडिल स्कूल में भी वह प्रथम स्थान प्राप्त करता रहा। समय के साथ चलते हुए कमला ने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास किया जिससे वह छात्रवृत्ति का अधिकारी बन गया। उसने कॉलेज में प्रवेश लिया और ऑनर्स के साथ बी.ए. उत्तीर्ण किया।

कमला के बी.ए. पास करते ही विवाह के लिए घटक लोग आने लगे। अनूपलाल और उनकी पत्नी, अर्थात नाना-नानी की यह गहरी इच्छा थी कि अपने नाती का विवाह अपनी आँखों के सामने देखें, परंतु उन्होंने बेटी की राय लेना भी आवश्यक समझा। अंत में सबने मिलकर विचार किया कि जीवन का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए कमला का विवाह कर देना ही उचित होगा। यही हुआ और कमला का विवाह सम्पन्न हो गया।

इसी बीच शिक्षक बहाली की घोषणा हुई। कमला ने भी आवेदन दिया और वह हाई स्कूल का शिक्षक बन गया।

कमला के हाई स्कूल का शिक्षक बनते ही समाज में मानो हलचल मच गई और तरह-तरह की बातें होने लगीं। कोई कहता कि जिसमें संकल्प लेने की शक्ति है वही सफल होता है।

कोई कहता कि महिला होते हुए भी जमुनिया ने पुरुषों को मात दे दी।

कोई कहता कि जिसमें पौरुष है वही सच्चा पुरुष है।

कोई कहता कि यदि भगवान हर परिवार में जमुनिया जैसी बेटी दें तो बेटों से सात गुना बेहतर। ❑

गाँव भगा दिया

☰

इस बार हथिया नक्षत्र में खूब वर्षा हुई। सामान्यत: हर साल हथिया नक्षत्र शारदीय नवरात्र यानी आश्विन की दुर्गापूजा में आता रहा है, लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। दुर्गापूजा पहले आ गया और हथिया नक्षत्र बाद में पहुँचा। यानी जिस दिन दुर्गापूजा समाप्त हुआ, उसके दूसरे ही दिन हथिया नक्षत्र चढ़ा।

इस साल शुरू से ही समय-समय पर वर्षा होती रही, इसलिए धान की फसल केवल राघोपुर गाँव में ही नहीं बल्कि आसपास के गाँवों में भी अच्छी रही। किसान प्रसन्न थे। हथिया नक्षत्र के तीसरे दिन भारी वर्षा हुई, जिससे इलाका, कोसी नदी के पश्चिम और कमला नदी के पूरब का क्षेत्र, पूरा जलमग्न हो गया। कोसी के पश्चिमी तटबंध और कमला के पूर्वी किनारे के छहर टूट गए। नतीजा यह हुआ कि इलाका बाढ़ से भर गया।

बरसात के दिन गाँव की चौपाल जैसी जगह पर बैठे सरूप काका भी भीगते-भीगते घर लौटे और दरवाजे पर बैठ गए। शुरू में सरूप काका को लगा कि यह भी रोज की तरह की बारिश है, लेकिन नहीं, यह तो भारी बरसात थी। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कोई कहता बादल फट गया, कोई कहता मेघ फट गया।

सरूप काका तो सीधे-सादे थे, समझ ही नहीं पा रहे थे कि बादल फटने और मेघ फटने में अंतर क्या है। इतने में उनका भतीजा मुनेसर आ पहुँचा। मुनेसर हाई स्कूल में पढ़ता था। सरूप काका ने उससे पूछा- “बौआ, लोग कह रहे हैं कि बादल फट गया!"

मुनेसर दसवीं कक्षा का छात्र था, कला संकाय का विद्यार्थी होने के बावजूद भूगोल भी पढ़ता था। उसने कहा- "काका, आज जो बरसात हुई, देखा न आपने, जैसे धान-चावल का बोरा या कोठी का मुँह खुलते ही झर-झराकर धान-चावल निकलता है, वैसे ही पानी गिर रहा था। यही होता है बादल फटना।"

मुनेसर अपनी समझ से बोला, लेकिन सरल स्वभाव वाले सरूप काका को बात जमी नहीं। उन्होंने कहा- "बौआ, ज़रा और साफ-साफ समझा।"

दसवीं कक्षा का विद्यार्थी मुनेसर, सरूप काका के प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे सका। यह समझते हुए उसने विषय को आगे बढ़ाते हुए कहा- "काका, आसाम में, जो अब मेघालय है, एक जगह है जिसका नाम है चेरापूँजी। वहाँ सबसे अधिक वर्षा होती है।"

विचार के प्रवाह में सरूप चाचा बोले- "चेरापूँजी में सबसे अधिक वर्षा होती है तो सबसे कम वर्षा कहाँ होती है?"

जैसे ही सरूप चाचा ने पूछा, मुनेसर ने उत्तर दिया- "जैकबाबाद में। देश की आज़ादी से पहले, यानी 1947 ईस्वी से पहले, जैकबाबाद भारत का हिस्सा था, लेकिन देश के विभाजन यानी भारत-पाकिस्तान के बँटवारे के बाद वह पाकिस्तान में चला गया। चेरापूँजी अब भी भारत में है।"

सरल स्वभाव वाले सरूप चाचा ने फिर पूछा- "वहाँ, यानी चेरापूँजी में खेती-बाड़ी कैसी होती है और पेड़-पौधे कैसे हैं?"

बालसुलभ ज्ञान के कारण मुनेसर ने अंदाज़ से तो कुछ कहा, लेकिन अपने उत्तर पर विश्वास बनाए रखने के लिए बोला- "काका, ठीक-ठीक तो नहीं जानता।"

जैसे किसी देवस्थान या धर्मस्थान का नाम सुनकर श्रोता के मन में उसे देखने की उत्सुकता जागती है, वैसे ही सरूप चाचा के मन में भी चेरापूँजी देखने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने मन ही मन सोचना शुरू किया कि यदि कोई साथी मिल जाए तो वह वहाँ जाकर देख आएँ कि चेरापूँजी कैसी जगह है, वहाँ की खेती-बाड़ी, पशुधन और पेड़-पौधे कैसे हैं।

संयोग से गाँव के ही एक व्यक्ति, यानी राघोपुर गाँव के रहने वाले

सुंदरलाल, जो आसाम के एक चाय बगान में नौकरी करते थे, उनसे भेंट हो गई। बातचीत के दौरान सुंदरलाल ने कहा- “सरूप भैया, आठ दिन बाद मैं आसाम जाऊँगा।”

सुंदरलाल से सरूप चाचा ने कहा- “सुंदर, मुझे भी साथ ले चलो।”

सुंदरलाल यह नहीं समझ पाए कि सरूप भैया क्यों जाना चाहते हैं, इसलिए बोले- “भैया, आप अगर आसाम जाएँगे तो यहाँ, यानी गाँव में खेती-बाड़ी और मवेशियों की देखभाल कौन करेगा?”

सरूप काका ने उत्तर दिया- “मैं कोई नौकरी करने थोड़े ही जा रहा हूँ। घूमने-फिरने जाऊँगा। सुना है वहाँ एक जगह है जिसका नाम चेरापूँजी है, जहाँ दुनिया की सबसे अधिक वर्षा होती है। इसलिए उस जगह को देखने जाऊँगा कि वहाँ की खेती-बाड़ी, मवेशी और लोगों के घर-द्वार कैसे हैं।”

सरूप काका की सोच सुंदरलाल समझ गए। बोले- “भैया, आठवें दिन तक मैं गाँव में हूँ, नौवें दिन गाँव से निकल जाएँगे। अगर आप भी चलना चाहें तो साथ चलें। हमारे इलाके के बहुत से लोग वहाँ रहते हैं।”

विचार के प्रवाह में सरूप काका ने पूछा- “हमारे इलाके के कितने लोग आसाम में रहते हैं?”

सुंदरलाल ने कहा- “भैया, कितने लोग रहते हैं यह तो ठीक-ठीक नहीं बता सकता, लेकिन हमारी भाषा, यानी मैथिली बोलने वाले लगभग चार लाख लोग हैं।”

सात दिन बाद, आठवें दिन सुंदरलाल के साथ सरूप काका आसाम पहुँचे। सरूप काका वैसे नहीं थे जैसे आम देखने वाले लोग होते हैं। आमतौर पर लोग केवल तीर्थस्थल देखने में रुचि रखते हैं, लेकिन सरूप काका अलग थे। वे वहाँ के खेत-खलिहान, पहाड़-पहाड़ियाँ, पेड़-पौधे, नदियाँ-नाले सबको ध्यान से देखते और उनकी तुलना अपने यहाँ के खेत-खलिहान और वृक्षों से करते।

दो दिन बाद सरूप काका को याद आया कि चालीस वर्ष पहले रधिया भाभी अपने सात साल के बेटे को लेकर भी आसाम आई थीं।

उन्होंने किसी से सुना था कि रधिया भाभी चाय बागान में काम करती हैं।

मन में यह भी खयाल आया कि यह बहुत पुरानी घटना है, हो सकता है रधिया भाभी अब इस दुनिया में न हों। लेकिन यह विश्वास भी था कि वह जब अपने सात वर्ष के बेटे को साथ लाई थीं, तो बेटा तो जीवित होगा ही।

यह सोचकर भी मन में संशय हुआ कि वह पहचान पाएँगे या नहीं। फिर यह विचार भी आया कि जब परिचय दिया जाएगा, तो लोग केवल एक पीढ़ी को नहीं बल्कि सात पीढ़ी पहले के व्यक्ति को भी पहचान लेते हैं।

तर्क-वितर्क करते हुए सरूप चाचा ने मन में निश्चय कर लिया कि जब इतने लोग यहाँ हैं तो एक दिन में नहीं, दो दिन में सही, दो दिन में नहीं तो तीन दिन में ही सही, लेकिन पता चलने पर मिलना संभव होगा ही।

गुम हुए लोगों की चर्चा सुनकर सबके मन में ऐसी जिज्ञासा जग जाती है कि वे सबकुछ छोड़कर उसे देखना चाहते हैं। सरूप काका के मन में भी वैसी ही जिज्ञासा उत्पन्न हुई। जिज्ञासा जागते ही वे पता लगाने लगे। जैसे एक गाँव का व्यक्ति दूसरे गाँव में खोजने पर मिल जाता है, एक ज़िले का व्यक्ति दूसरे ज़िले में मिल जाता है, उसी तरह एक राज्य का व्यक्ति भी दूसरे राज्य में मिल ही जाता है। दूसरे दिन, यानी रधिया भाभी की खोज के क्रम में, सरूप काका को रधिया भाभी मिल गईं।

सत्तर-पचहत्तर वर्ष की रधिया भाभी को देखकर पहले न तो सरूप काका उन्हें पहचान सके और न ही रधिया भाभी सरूप काका को पहचान पाईं। लेकिन जब दोनों के बीच गाँव का परिचय देते हुए बातचीत हुई, तो दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। पहचानते ही रधिया भाभी सरूप काका का स्वागत-सत्कार करने लगीं। स्वागत करते हुए रधिया भाभी बोलीं- " बौआ, यहाँ आए हुए चालीस वर्ष हो गए। ज़मीन खरीदकर अपना घर भी बना लिया है। किसी चीज़ की कोई कमी नहीं है। बहुत पुराने संबंध यानी चालीस वर्षों का सब पीछे छूट गया है इसलिए कम-से-कम सात दिन यहाँ ठहरिए। मैंने गाँव क्यों छोड़ा, क्यों यहाँ आई, सब वृत्तांत सुनाऊंगी।"

अब तक सरूप काका स्वयं को किसी और जगह, किसी और राज्य, किसी और वातावरण में महसूस कर रहे थे, लेकिन रधिया भाभी के यहाँ पहुँचकर

उन्हें लगा मानो वे अपने ही गाँव और अपने ही घर में हैं। पहला दिन, यानी जिस दिन सरूप काका रधिया भाभी के घर पहुँचे, देखने-सुनने में ही बीत गया।

सूर्यास्त के बाद मुनेसर, रधिया भाभी का बेटा, काम से घर आया। न सरूप काका ने मुनेसर को पहचाना और न ही मुनेसर ने सरूप काका को पहचाना। नहा-धोकर मुनेसर ने माँ से पूछा- "माँ, ये कौन हैं?"

रधिया भाभी ने कहा- "बेटा, पहले कपड़े बदलकर तैयार हो जा, फिर सब मिलकर एक जगह बैठकर बातें करेंगे।"

जैसा माँ ने बेटे से कहा, मुनेसर ने वैसा ही किया। इसी बीच बहू, यानी रधिया भाभी की पुतोहू, जलपान बनाने लगी। रधिया भाभी ने दो घर बनवाए थे। एक घर में तीन कमरे थे और दूसरा घर दरवाजे की तरह बैठने-बैठाने और काम करने के लिए बना था। घर को तीन हिस्सों में बाँटकर छत भी पक्की करवाई थी।

तीनों लोग, यानी सरूप काका, रधिया भाभी और मुनेसर, एक साथ बैठकर असम की चर्चा करने लगे। रधिया भाभी बोलीं- "बौआ सरूप, हम भी बूढ़े हो गए और आप भी चालीस की उम्र में पहुँच गए हैं, लेकिन बेटा यानी मुनेसर और बहू यानी मुनेसर की पत्नी तो अभी युवा ही हैं। इसलिए पहले गाँव की, यानी राघोपुर गाँव की कहानी कहती हूँ। क्योंकि जब हम गाँव छोड़कर यहाँ असम आए थे, तब आप भी नौजवान ही थे। उस समय की सारी बातें आपको पूरी तरह याद नहीं होंगी। तब मुनेसर तो बस सात साल का बच्चा ही था।"

जैसा रधिया भाभी ने कहा, वैसा ही सरूप चाचा ने स्वीकार करते हुए उत्तर दिया- "हाँ, सही है। मुझे ठीक से कुछ याद नहीं है और जो थोड़ा-बहुत याद था, वह भी समय बीतने के साथ भूल गया।"

रधिया भाभी बोलीं- "बौआ, आप भी सुनिए और मुनेसर, तुम भी सुनो। उस समय की बात कह रही हूँ जब गाँव भगा दिया गया था। मतलब गाँव के लोगों का घर उजाड़कर घर-आँगन छीन लिया गया था। उस समय का किस्सा कह रही हूँ। गाँव मालिक-मलिकानों का गाँव था। यानी राजा, रजवार और जमींदार ही गाँव के मालिक थे। वही किसान और मजदूरों से, यानी जिनके पास

थोड़ा-बहुत खेत-खलिहान था, उनसे ज़मीन का लगान वसूलते थे। साल-दर-साल ज़मीन का कर लेते थे। अगर दो साल बकाया रह जाता तो उनकी ज़मीन नीलाम कर लेते। मतलब वह ज़मीन मालिक-मलिकानों की हो जाती। दूसरा था सूदखोर महाजन। वह समय-बेसमय जो लोग कर्ज़ लेते, उनसे ब्याज वसूलता। उसमें झूठ-फरेब और बेईमानी भी करता और समय पर पैसे न लौटाने पर खेत-पथार छीन लेता। तीसरा था गाँव का बलशाली आदमी। वह गरीबों और असहायों की ज़मीन दबाकर अपने खेत में मिला लेता, जिससे गरीब और भी मजबूर हो जाता। इसी तरह विधवा और लाचार औरतों को 'डाइन' कहकर मारने-पीटने के बाद गाँव से भगा देते और उनकी ज़मीन हड़प लेते। यही था पुराना किस्सा।"

सरूप काका बोले- "भाभी, मुझे तो लोग हमेशा सीधा-सादा ही कहते आए हैं, क्योंकि अपनी मेहनत से ही परिवार चलाता हूँ और खुद भी जीता हूँ। मैं तो हमेशा सीधेपन का जीवन जीता रहा। आपके साथ ऐसा क्या हुआ कि गाँव छोड़कर यहाँ आना पड़ा?"

सरूप काका की बात सुनकर रधिया भाभी की दोनों आँखों से आँसू बहने लगे। उनके होंठ बंद हो गए। काँपते हृदय से उन्होंने कहा- "बौआ, उस समय, यानी चालीस साल पहले, गाँव-गाँव में महामारी, हैजा, चेचक आदि फैलते रहते थे। हमारे गाँव में भी हैजा फैला। बहुत से लोग मर गए। उसी हैजे में मुनेसर का बाप भी मर गया। श्राद्ध-कर्म के पाँच दिन बाद झबड़ूलाल तीनों बेटों के साथ आकर कहने लगा कि तुम्हारे घरवाले ने हमसे तीन सौ रुपये और पाँच मन धान कर्ज लिया था। वह ब्याज समेत पाँच सौ रुपये और आठ मन धान हो गया है, सो दो। मुझे तो इसका पता ही नहीं था, इसलिए मैंने कह दिया कि मुझे इस बारे में कुछ मालूम नहीं।"

"मेरी बात सुनते ही झबड़ूलाल गालियाँ देने लगा। मैं चुप रही। गाँव में बहुत-सी असहाय औरतों की दशा मैंने देखी थी। मैं कर ही क्या सकती थी, चुपचाप सह गई।"

सरूप काका ने पूछा- "फिर क्या हुआ?"

रधिया भाभी बोलीं- "साँप के मुँह में साँप ही चढ़ता है। गाँव के लोग सब

झबड़ूलाल का ही साथ देने लगे। मैं पूरी तरह निस्सहाय हो गई। घर में जो कुछ था, सब ले लिया गया।”

विह्वल होकर सरूप काका बोले- “फिर क्या हुआ?”

रधिया भाभी बोलीं- “मुनेसर तब सात साल का था। समझ में आ गया कि अब मारपीट होगी। मैं तो खुद मार भी सह लेती, लेकिन बेटा तो मर ही जाता। इन महाजनों में कहाँ दया-धरम होता है। बेटे को साथ लिया और नैहर चली गई। मेरा भाई यहीं, असम में, चाय बगान के मालिक के यहाँ नौकरी करता था। वह गाँव आया हुआ था। जब तक वह गाँव में रहा, मैं भी महिनाथपुर में रही। सात दिन बाद जब वह अपने परिवार के साथ यहाँ लौटने लगा तो मैं भी बेटे को लेकर उसके साथ आ गई। दो दिन तक गाड़ी में सफर किया और फिर असम पहुँची। शुरू में यहाँ के जंगल और पहाड़ देखकर डर लगता था, लेकिन भाई का परिवार साथ था, धीरे-धीरे डर मिट गया।”

सरूप काका ने पूछा- “फिर क्या हुआ?”

रधिया भाभी बोलीं- “गाँव में जो काम करती थी, वह काम यहाँ तो था नहीं। इसलिए बिल्कुल अनाड़ी थी। संयोग ऐसा हुआ कि जिस मोहल्ले में हम रहने लगे, वहाँ ज्यादातर लोग चाय बगान में काम करने वाले थे। एक महिला थीं, विधवा। उनके पति हाई स्कूल में शिक्षक थे। वे बस दुर्घटना में मर गए थे। वही महिला अपने घर में स्कूल चलाती थीं और बच्चों को पढ़ाती थीं। मुझे वहीं नौकरी मिल गई। उसी घर में, जहाँ स्कूल चलता था, हम दोनों माँ-बेटा भी रहने लगे और काम भी करने लगे।”

लंबी साँस छोड़ते हुए सरूप चाचा बोले- “अब तो अपना सब कुछ हो गया?”

‘अपना सब कुछ’ सुनकर रधिया भाभी मुस्कुराते हुए बोलीं- “हाँ, सब कुछ तो हो ही गया। आपके आशीर्वाद से मुनेसर अच्छी नौकरी करता है। दो पोते हैं, दोनों पढ़ रहे हैं। पोती बड़ी है, वह ससुराल में है।”

सरूप चाचा बोले- “एक बार गाँव चलिए।”

रधिया भाभी बोलीं- “जिस गाँव ने भगा दिया, उस गाँव का मुँह क्या

देखूँ। अब तो पका आम हो गई हूँ। जितने दिन जी रही हूँ, उतने दिन जी लूँगी।"

सरूप चाचा ने मुनेसर से कहा- "बेटा, मैं तो यहाँ बिल्कुल अनाड़ी हूँ। कुछ देखा-सुना नहीं है। तुम मुझे चेरापूँजी दिखा दो।"

मुनेसर ने कहा- "चाचाजी, पहले जब असम और मेघालय का बँटवारा नहीं हुआ था, तब चेरापूँजी असम राज्य में पड़ता था, लेकिन अब वह मेघालय में पड़ता है। परसों रविवार है, छुट्टी होगी। सुबह हम दोनों चलेंगे। बस का रास्ता है। शाम तक देखकर लौट आएँगे।" ❑

आत्माराम

☰

चैत–बैशाख की सीमा पर समय है। अभी चैत का अंतिम दौर चल रहा है; तीन दिन बाद, यानी चौथे दिन, बैशाख लगेगा। मौसम का रंग-रूप पहले ही बैशाख जैसा हो चुका है। आज 10 अप्रैल है, 13 अप्रैल को पूर्णिमा और 14 अप्रैल को संक्रांति, दोनों एक ही कड़ी पर आएँगे। कुल मिलाकर, मौसम का रूख बैशाख का संकेत दे रहा है।

मिथिलांचल के बीच लक्ष्मीपुर एक गाँव है, हमारा अपना गाँव। जमीन में नमी कम होने से इस साल खेसारी की खेती पिछली बार की तुलना में कम हुई, और जो हुई भी है उसकी उपज की संभावना भी कम ही समझिए। कारण साफ है: खेतों की जुताई कम हुई, इसलिए बोवाई भी कम, और जो फसल लगी है वह भी जगह-जगह सूख रही है। आम तौर पर इस समय तक, यानी 10 अप्रैल तक, खेतों में खेसारी लहलहाती दिखती थी, हरियाली छा जाती थी, पर इस बार ऐसा नहीं है।

वैसे, दूसरे गाँवों की तरह लक्ष्मीपुर में भी अब दलहनों की तरह खेसारी की दाल की खेती पतली पड़ती जा रही है। जब तक गेहूँ नहीं बोया जाता था, तब तक दलहन खूब होते थे; पर जिस दिन से गेहूँ की खेती बढ़ी, दलहन घटता गया। इसकी भरपाई के लिए किसानों ने खेसारी पर ज़ोर दिया। संयोग अक्सर ऐसा रहता है कि जिन खेतों में नवंबर की शुरुआत से तीस नवंबर तक गेहूँ बोया जाता है, उन खेतों में कटाई के बाद खेसारी की फसल की जाती है।

खेसारी भी कई किस्म की होती है। हमारे यहाँ जो किस्म चलती आई है,

जिसे सोना खेसारी कहते हैं, वह माघ से निचले खेतों में धान के साथ भी लगती है, और अलग से भी। चैत के अंधियारे पक्ष से इसकी बुआई शुरू हो जाती है। अगर वक्त अनुकूल रहा, यानी एक-दो बरसातें ठीक-ठाक समय पर हो गईं, तो फसल सँभल जाती है और उपज अच्छी मिलती है; वरना मामला उलझ जाता है।

अब पूसा फार्म, राजेंद्र कृषि केंद्र, पूसा से बैसाखिया खेसारी पर भी अनुसन्धान हुआ है। उसकी दानेदारी सोना खेसारी से बड़ी मानी जाती है, और पंद्रह अप्रैल तक बुआई हो जाए तो फसल ठीकठाक आती है।

मैंने गेहूँ काटकर 25 मार्च को खेसारी बोई थी। इसी वजह से खेसारी के पौधे अच्छी तरह उग आए हैं। गेहूँ में पानी देते समय खेत को पानी मिला था और जुताई भी हुई थी, इसलिए दूसरे किसानों की तुलना में मेरी फसल की बढ़वार बेहतर है। हाँ, मवेशियाँ, खासकर गाय-भैंस और नीलगाय, का उपद्रव कुछ ज़्यादा ही है। इसलिए उन्हें भगाने और खेत की हालत देखने मैं खेत गए था।

बाँध की ओर से घूमकर जब लौटा, तो दरवाजे पर एक अंजान आदमी बैठा दिखा। मन में कोई चिंता नहीं हुई, होती भी क्यों? जब दरवाजा खुला हो, तो पहचान वाला हो या बगैर पहचान वाला हो, कोई भी आ सकता है। तीर्थ-स्थानों पर तो धर्मशाला होती है, लेकिन गाँव-घर में चाहे किसान परिवार हो या मज़दूर परिवार, उनका दरवाज़ा धर्मशाला सदृश ही होता है।

दरवाजे पर उनके पास जाकर मैंने कहा- "हाथ-पाँव धो लिए?"

आगे बात इसलिए नहीं बढ़ाई कि वह खुद बता दे कि किस काम से आया है। अगर चेहरा पहचान में आता, तो पूछ लेते कि क्यों आए हैं या किस काम से आए हैं। पर चेहरा अनजान था। उन्होंने कहा- "हाथ-पाँव नहीं धोया हूं।"

जैसे ही उन्होंने यह कहा, मैं सीधे आँगन में गया, लोटे में पानी लिया और उनके पास लौटते हुए बोला- "लीजिए, पहले हाथ-पाँव धो लीजिए, फिर जलपान करके बात करेंगे।"

खाने का समय तो निकल ही चुका था। हमारे यहाँ खाना दोपहर में होता है, और अभी तो वह समय भी बीत चुका था, करीब चार बज रहे थे। पूस-माघ

के माह में तो चार बजे तक शाम जैसा माहौल हो जाता है, पर बैसाख-जेठ में तो दोपहर जैसा ही लगता है।

उसने हाथ-पाँव धोए, फिर दरवाजे पर आकर बैठ गया। मैंने कहा- "खाने का समय निकल चुका है, लेकिन नाश्ते का तो है। पहले कुछ खा लीजिए।"

मेरी बात सुनकर, यानी आग्रह सुनकर, वे कुछ नहीं बोले। इससे मुझे समझ में आ गया कि शायद भूखे हैं। दरवाज़े की चौकी से उठकर मैं आँगन में गया और पत्नी से कहा- "अंजान अतिथि हैं, लगता है भूखे हैं, तो ज़रा कुछ अच्छे नाश्ते का इंतजाम कर दो।"

पत्नी बोली- "चूड़ा भून लेती हूँ, एक-आध मुट्ठी तुम भी खा लेना और उन्हें भी खिला देंगे।"

पत्नी का विचार अच्छा लगा। मैंने सोचा, जब तक चूल्हा जलाकर पत्नी चूड़ा भूनती है, तब तक मैं क्यों न उनके पास जाकर, यानी दरवाज़े पर अतिथि के पास बैठकर, कुछ बातें कर लूँ। बातचीत में थोड़ा समय भी कट जाएगा और उतने में चूड़ा भी तैयार हो जाएगा। ऐसा ही किया।

दरवाज़े पर जाकर मैंने उनसे पूछा- "आपका घर कहाँ है?"

वे बोले- "हमारा पैतृक घर तो संतोषपुर गाँव में है, मगर गाँव में रहते नहीं, जहाँ जिस दिन ठिकाना मिल जाए, वहीं घर है।"

उनकी यह बात सुनकर मन में लगा कि शायद पहुँचे फ़कीर किस्म के व्यक्ति हैं। इसलिए मैंने भी सोचा कि बातचीत सोच-समझकर करनी चाहिए। शब्दों का संयम सबसे बड़ा संयम है, इसलिए ज़िम्मेदारी से शब्दों का इस्तेमाल करना ही समझदारी है। जैसे शब्द का प्रयोग करोगे, वैसा ही तुम्हारा परिचय बनेगा। कहा भी जाता है कि मनुष्य के भीतर सात चक्र होते हैं, जिनमें आज्ञाचक्र प्रमुख है। आज्ञाचक्र जितना मज़बूत होगा, तुम भी उतने ही मज़बूत बनोगे। बाहरी लोगों से जितना संयमित शब्दों का प्रयोग करोगे, उतना अच्छा, और अपने भीतर भी जो कहो, वही करो और जो करो, वही कहो—इसका भी महत्व है। नाश्ता तैयार कर पत्नी आँगन के दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई। उन्हें देखते ही मैं समझ गया कि नाश्ता बन गया है। आँगन से थाली में नमक, मिर्च, सरसों का

तेल मिलाया हुआ चूड़ा ले आकर उनके सामने रख दिया। भूजा देखकर वे मन ही मन प्रसन्न होकर बोले- “इतनी जल्दी कैसे तैयार कर लिया!”

मैंने कुछ कहा नहीं, बस चुपचाप सुनता रहा। जैसे भूखे पेट में रोटी का एक टुकड़ा भी बड़ा लगता है, वैसे ही उन्होंने भी चार-पाँच बार भुजा खाया और पानी पिया। पानी पीने के बाद बोले,

"रामनवमी में जनकपुर गया था। वहाँ से घूमकर गाँव लौट रहा हूँ।”

मैंने मन ही मन हिसाब लगाया तो बात मिल गई। 6 अप्रैल को रामनवमी थी, आज 10 अप्रैल है। मैंने कहा- “वाह-वाह! मेला कैसा था?”

अतिथि बोले- “मेला तो मेला ही था। जैसे मिथिलांचल के लोग आए थे, वैसे ही अयोध्या से भी सैकड़ों की संख्या में गाड़ियों में भरकर यात्री आए थे।”

नाश्ता कर उन्होंने पानी पिया, एक गहरी डकार ली, जिससे मुझे भी समझ में आ गया कि उन्होंने जी-भरकर खाया है। मैंने कहा- “पान तो आप खाते नहीं, वैसे घर में है भी नहीं। तंबाकू लेंगे?”

मुस्कुराते हुए बोले- “अन्न छोड़कर मैं कोई और नशा नहीं करता।”

अनायास मेरे मुँह से निकला- “वाह!”

अपना परिचय देते हुए बोले- “मेरा नाम रामदास है और मैं संतोषपुर गाँव का रहने वाला हूँ।”

मन में तो आया कि जैसे गाँव का नाम, वैसे ही इनका नाम भी अद्वितीय है, लेकिन यह मैंने कहा नहीं। बस इतना पूछा- “परिवार में कौन-कौन हैं?”

परिवार तो परिवार ही होता है। कोई अपने वंशगत रिश्तेदारों को परिवार मानता है, तो कोई मनुष्यों के किसी बड़े समूह को भी परिवार समझ लेता है। रामदास बोले- “जब तक बच्चे छोटे थे, तब तक अपने परिवार में रहकर, खेती करके और मवेशी पालकर जीवन-यापन करता था। लेकिन जब बेटी ससुराल में बस गई और बेटा जवान हो गया, फिर उसका विवाह कर दिया, तो अपने वंशगत परिवार से निकलकर मनुष्यों के सामूहिक परिवार में शामिल हो गया।”

रामदास की यह बात सुनकर मन में लगा कि यह तो कुछ अलग तरह के

इंसान हैं। आमतौर पर देखा है कि आदमी जितना उम्रदराज़ होते जाता है, उतना ही अपने वंशगत परिवार से चिपक जाता है। वहीं रामदास कह रहे हैं कि उन्होंने तो परिवार ही छोड़ दिया! मैंने पूछा- "परिवार को क्यों छोड़ दिया?"

रामदास ने खुलकर कहा- "जीवन के चालीस वर्ष परिवार में बिताए। जब दोनों बेटियों की शादी कर उन्हें ससुराल विदा कर दिया और बेटे का विवाह कर बहू को घर ले आया, तब मन में विचार उठा कि ज़िंदगी का आधा समय तो बीत चुका है, पर जो शेष आधा है उसका उपयोग मानव सेवा में करूँ। यही सोचकर बेटे से कहा, 'बेटा, अब तुम अपने परिवार का भार अपने कंधों पर लो। मनुष्य बनकर जब इस धरती पर जन्म लिया है और यदि मनुष्य की सेवा ही न कर पाए, तो वह जीवन कोई जीवन नहीं है।'"

रामदास की बात सुनकर मन चौंक उठा। मतलब यह कि मन के भीतर सजगता जागी, सजगता इस बात की कि गुण-गुण के आधार पर मनुष्यों में अंतर भी होता है। इसलिए जैसे व्यक्ति हों, उनका आदर-सम्मान वैसा ही हो और उनके भीतर जो गुण हों, उनका अनुकरण करने का प्रयास भी करना चाहिए। यदि द्वार पर पहुँचे ज्ञानी से ज्ञान ग्रहण न कर पाएँ, तो वह अपनी अज्ञानता है। जैसे वेद मंत्र कहता है, 'अहो ज्ञान, महो ज्ञान', वैसी अनुभूति तभी सजगता लाती है।

आज इक्कीसवीं सदी चल रही है। आध्यात्मिक दर्शन भारतीय दर्शन का प्रमुख अंग है, जो शरीर के साथ-साथ मन और आत्मा की पूर्ण व्याख्या करता आया है और करता रहेगा। तो क्यों न रामदास से अच्छी तरह समझ लिया जाए। जिस तरह कोई उत्तम फल की आशा से कोई अच्छा कर्म करने का कदम बढ़ाता है, उसी तरह मेरे मन में भी यह सद्विचार जगा और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली।

इतने में पत्नी दो गिलास में चाय लेकर दरवाज़े पर पहुँची और दोनों के सामने रख दी। चाय देखकर पत्नी से कहा- "अतिथि दिन में तो सुखपूर्वक भोजन कर लेते हैं, मगर रात में ऐसा नहीं होता।"

रामदास भी सुन रहे थे, पर कुछ बोले नहीं। चुपचाप चाय का गिलास उठाकर पीने लगे। उनके स्नेह को देखकर मेरे मन का स्नेह भी उमड़ पड़ा। सहसा

मन में आया कि दुनिया में हर कोई चाहता है कि दूसरों से उसे प्रेम मिलता रहे। मगर दूसरों का प्रेम पाने के लिए खुद भी तो दुनिया, यानी लोगों से प्रेम करना होगा।

अचानक विचार उठा कि जिनसे ज्ञान मिल रहा हो, उनके प्रति अगर आदरपूर्ण श्रद्धा न रखी जाए, तो यह कहीं से भी उचित नहीं होगा। आदर के भाव से कहा- "बाबा, आपके जैसे आत्मज्ञानी व्यक्ति का द्वार पर आना भाग्य की बात है।"

मेरी बात सुनकर रामदास ने शब्दों में कुछ नहीं कहा, केवल हृदय की खुशी से मुस्कुरा दिए। उनके अंग-अंग से जैसे प्रेम झलक रहा था। मैंने कहा- "बाबा, उम्र में भले आप बहुत बड़े न हों, पर बोध में आप अत्यंत गहरे हैं, इसलिए..."

रामदास बोले- "बोलिए-बोलिए।"

मैंने कहा- "बाबा, शरीर, मन और आत्मा के विषय में आपके मुख से अमृत वचन सुनकर मन को तृप्त करना चाहता हूँ।"

रामदास ने कहा- "मन, आत्मा का समत्व रूप शरीर है। मन में विचार चलते हैं, भावनाएँ चलती हैं। इच्छाओं का मूल भी मन है। किसी वस्तु को देखने से इच्छा का जन्म मन में होता है। जैसे कुछ देखने से इच्छा उत्पन्न होती है, वैसे ही उसे प्राप्त करने की आकांक्षा भी मन में होती है।"

रामदास के विचार सुनकर मेरा मन उनके विवेचन से आगे बढ़कर अपने अनुभव-क्षेत्र तक पहुँच गया, तो अनायास मुँह से निकला- "हाँ, ऐसा तो होता ही है।"

मेरे विचार को सुनकर या शायद अपने विचार की शृंखला को आगे बढ़ाने के भाव से रामदास बोले- "शरीर के भीतर जो बोध शक्ति है, वही आत्मा है।"

आत्मा के इस रूप को मैं स्पष्ट रूप से नहीं समझ सका, इसलिए मेरे चेहरे का भाव कुछ उदास-सा हो गया। मन के भीतर विचार घूम रहे थे, पर होंठों से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। यह रामदास की नज़र से बचा नहीं। परखते हुए वे बोले- "आत्मा और शरीर के बीच ठीक वैसा ही गहरा संबंध है, जैसा सूर्य और

प्रकाश के बीच होता है।”

मैंने कहा- “ज़रा, ठीक से...”

अधूरी बात सुनने के बाद भी रामदास जैसे पूरी तरह समझ गए और बोले- “जैसे सूर्य के प्रकाश का एक केंद्र होता है, जहाँ से प्रकाश फैलता है और उसी प्रकाश में हम सब कुछ देख पाते हैं, वैसे ही चेतन रूप में आत्मा की भी एक गुफा होती है। उसे जानना ही आत्मा को जानना है।”

अब तक के जीवन में आत्मतत्त्व की व्याख्या अनेक लोगों के मुख से, अनेक रूपों में सुनता आया था, इसलिए मन धीरे-धीरे ही यह समझ पा रहा था कि आत्मा क्या है और शरीर में वह कहाँ निवास करती है। कभी लगता कि जैसे हाथ-पाँव, मुँह-कान आदि शरीर के अंग हैं, वैसे ही आत्मा भी कोई अंग है। परंतु अगले ही दिन मन में यह विचार उठ जाता कि आत्मा कोई अंग नहीं, बल्कि वह है जो शरीर को संचालित करती है। फिर मन कहता कि आत्मा प्राणशक्ति भी नहीं है, क्योंकि प्राणशक्ति तो सभी शरीरों में होती है, मगर आत्मशक्ति हर जगह दिखाई नहीं देती।

यही तरह-तरह के अज्ञान और आभास के बीच विचार चलता रहा। तभी मन में आया कि रामदास से आग्रह करूँ कि वे कुछ दिन यहाँ रहकर मेरे मन की मैल धो दें। मैंने कहा,

“बाबा, कुछ दिन यहां रुक जाइए।” ❑

अठहत्तरवाँ स्वतंत्रता दिवस

जिस तरह अपने जन्मदिन की तारीख का कोई ठिकाना नहीं रहा, उसी तरह देश के स्वतंत्रता दिवस के तारीख का भी ठिकाना नहीं रहा। ठिकाना होता भी कैसे? जैसे वर्ष, माह, दिन और दिन के क्षण-क्षण, पल-पल की अपनी गति होती है, वैसे ही जीवन की भी अपनी गति है। उसी गति में मनुष्य गतिशील होकर आगे-पीछे की बातों को भूलता और याद करता हुआ यात्रा करता है। जीवन की यात्रा छोटी नहीं है, इसलिए बीच में बहुत कुछ भूल जाना स्वाभाविक है। मेरे साथ भी यही हुआ, भूल गया। यह कहना कि ऐसे केवल मैंने ही भुलाया, यह भी सही नहीं है। सब लोग भूलते हैं। अगर वे नहीं भूलते तो गाँव-समाज, आस-पड़ोस में जो हम देखते हैं, उसमें अस्सी वर्ष के कुछ लोग ही जीवित रहते हैं, बांकि लोग तो उससे पहले ही मृत्यु के रास्ते पकड़ लेते हैं।

अब आप ही बताइए, जब यह जानते और देखते हुए भी कि मृत्यु निश्चित है, तो लोग धन-संपत्ति के संचय में जी-जान से क्यों लगे रहते हैं? क्या वे मृत्यु को नहीं भूलते? या फिर वह; यह नहीं समझते कि मृत्यु अनिवार्य है, जिसने जन्म लिया है वह मरेगा ही! रेलगाड़ी हो या कोई और सवारी का चालक, वह अपने पड़ाव की सीमा से पहले ही गाड़ी की गति को तोड़ने लगता है, पर मनुष्य अपने पड़ाव की सीमा को भूलकर, चाहे यह जान-बूझकर हो या अनजाने में, अपनी गति कहाँ तोड़ पाता है? उल्टे, वह और अधिक गतिशील हो जाता है। अगर ऐसा न होता तो वह अपने संचय की गति को धीमा करता। यह अलग बात है कि इस बीच अनेकों जानलेवा बीमारियाँ भी हैं जो उम्र की परवाह किए बिना अचानक आकर जीवन को मृत्यु में बदल देती हैं।

इसके साथ ही यह भी तो सच है कि जीवन, जीवन ही है, जैसे कच्ची मिट्टी के बर्तन, या रूई के महीन रेशे की तरह, कब टूट-फूट जाएगा, कब बिखर जाएगा, इसका भी कोई ठिकाना नहीं है।

चौदह अगस्त की शाम पौने सात बजे रेडियो खोला तो बिजली नहीं थी, यानी बिजली की लाइन कटी हुई थी, इसलिए रेडियो साफ आवाज में बज रहा था। रेडियो पर सुना कि आज संध्या सात बजे से आदरणीया महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मुर्मू का देश के नाम अठहत्तरवें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर संदेश प्रसारित होगा। उस समय, यानी सात बजे से पहले, राष्ट्रगान "जन गण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता..." चल रहा था।

राष्ट्रगान सुनकर मन जैसे प्रसन्न हो रहा था, वैसे ही विचार भी आंदोलित होने लगे, मानो आज़ादी के आंदोलन का इतिहास किसी चलचित्र की रील की तरह मन में घूमने लगा हो। राष्ट्रगान समाप्त हुआ। नज़र घड़ी पर डाली तो देखा कि घंटे की सुई सात पर पहुँच चुकी है। सात बजते ही मन को प्रशांत महासागर के जल की तरह स्थिर किया। बिना कुछ सुने ही भीतर एक लहर उठी कि अब माननीय राष्ट्रपति का संदेश सुनेंगे। मन को शांत कर कानों को सजग किया। हाय रे किस्मत! इतने में बिजली आ गई और रेडियो में घनघनाहट व भनभनाहट शुरू हो गई। रेडियो इस तरह घरघराने लगा कि कोई बात साफ-साफ सुनाई ही न दे।

राष्ट्रपति का भाषण जारी था, पर कुछ समझ में नहीं आ रहा था। फिर भी मन में यह विश्वास बना रहा कि यह बिहार की बिजली है, जो आती-जाती रहती है, इसलिए अगर पूरी बात न भी सुन पाएँ, तो भी कुछ अंश तो मिल ही जाएगा। इसलिए न रेडियो बंद किया, न ध्यान कहीं और भटकने दिया। उम्मीद थी कि सोलह आने न सही, तो बारह-चौदह आने का संदेश तो सुन ही लेंगे। वह भी अठहत्तर वर्षों की आज़ादी का संदेश, जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से बढ़ती जा रही थी। संयोग से या कुसंयोग से कहें , बिजली ने अपना सोलह आना कर्तव्य निभाया, और रेडियो की घरघराहट अंत तक वैसी ही रही, जैसी शुरुआत में थी। देश के नाम संदेश समाप्त हो गया, पर सुना कुछ भी नहीं।

राष्ट्रपति का भाषण भले न सुन सका, पर अपना जन्मदिन जो भूल गया था, 5 जुलाई 1947, वह याद आ गया। इससे अचानक मन में खुशी भर आई। देश की स्वतंत्रता से ठीक एक माह दस दिन पहले मेरा जन्म हुआ था। जन्म तो गुलाम देश में, अंग्रेज़ी शासन के बीच हुआ, पर पालन-पोषण स्वतंत्र देश में, अंग्रेज़ी हुकूमत के जाते हुए दिनों में हुआ। मन और भी प्रसन्न हो गया। लेकिन जैसे ही अठहत्तर वर्षों के अपने जीवन की ओर दृष्टि डाली, मन ने स्वयं को उलाहना दिया कि इतनी लंबी उम्र बीत गई और किया कुछ नहीं। तभी एक कविता याद आई- “गई उमरिया बित फुसिए मायामे दाग लगल बड़ कारी कंचन कायामे।”

वैसे, जीवन का दाग कुकर्म से लगता है, वह तो मैंने कभी किया ही नहीं, फिर दाग क्यों लगता? पर इतना तो दाग कहा जा सकता है कि इतनी लंबी उम्र व्यर्थ ही बीत गई। अचानक मन में यह ग्लानि भी जागी कि जिस देश का अन्न-पानी अठहत्तर वर्ष खाया-पिया, उसके लिए; उसके बदले में कुछ किया ही नहीं।

जैसे गीत में कहा गया है- “जीवन नया मिलेगा, अंतिम चिता में जलकर”, वैसे ही मेरे मन में यह विचार आया कि जो समय बीत गया, वह तो बीत गया। चाहे जितना भी पछताऊँ, वह लौटकर नहीं आएगा, लेकिन इतना तो संभव है कि जो जीवन शेष है, उसमें कुछ किया जा सके। यह भी तो निश्चित नहीं है कि छह महीने या एक वर्ष में ही मृत्यु हो जाएगी। कई बार देखा है कि लोग सौ-सवा सौ वर्ष तक जीवित रहकर इसी धरती पर खड़े रहते हैं। यदि मेरे साथ भी ऐसा हुआ, तो देश-सेवा के लिए कुछ समय अवश्य मिल जाएगा। मन में शांति आई।

शांति तो आ गई, लेकिन क्या करना है, यह समझ में नहीं आ रहा था। न तो चिकित्सा का ज्ञान है कि समाज में लोगों की बीमारियों का उपचार कर सकूँ, न इंजीनियरिंग आती है कि मशीन बना सकूँ या उसे चला ही सकूँ। अनदेखे रास्ते के किनारे पहुँचकर जैसे कोई व्यक्ति थककर रुक जाता है, वैसे ही मेरा मन भी थककर ठहर गया। थके हुए मन में विचार आया कि जो थोड़ी-बहुत समझ-बुद्धि अपने पास है, क्यों न उसीका पूरी शक्ति से उपयोग करूँ। मन मान गया कि वही करूँगा। जिससे जो सेवा हो सकेगी, उसे ही अपनी सेवा मानूँगा।

रात के आठ बज गए। मन ही मन ठाना कि साहित्य से जुड़ा हूँ, तो स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर एक कहानी लिखकर देशभक्त शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करूँ और आज़ादी की लड़ाई को स्मरण करूँ। मन ने सहमति दी। जब स्मरण करने बैठा तो यह याद ही नहीं आ रहा था कि लड़ाई की शुरुआत कब हुई थी। हमारे देश का यह भी दुर्भाग्य रहा कि वह हज़ारों वर्षों तक गुलाम रहा, अर्थात विदेशी आते-जाते रहे और लंबे समय तक यहाँ शासन करते रहे। इतिहास पढ़ा नहीं था, इसलिए मन उलझ गया। उलझने का एक दूसरा कारण यह भी था कि आज का जो देश है, यानी आज का भारत, उसकी जो सूरत अब है, ऐसी सूरत पहले कभी नहीं थी। तब छोटे-छोटे सैकड़ों राजा-महाराजा थे, जिनकी अपनी-अपनी शासन पद्धति और प्रशासन व्यवस्था थी।

मन ही मन कई विचारों को सूत्रबद्ध करने की कोशिश की, पर सफलता नहीं मिली। हार मानकर अपने ध्यान को अंग्रेज़ी शासन पर केंद्रित किया, पर वहाँ भी अनेक लड़ाइयों का सिलसिला सामने आया। अंग्रेज़ों को लोगों ने यूं ही शासक नहीं मान लिया था। यह अलग बात है कि वे व्यापारी बनकर आए और अपनी शक्ति के बल पर देश का शासन अपने हाथों में ले लिया। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक और दक्षिण से पूरब-पश्चिम तक, यानी पूरे भारत में, अनेक राजा-महाराजाओं से लड़ाइयाँ भी हुईं।

देश की लड़ाई का यह विराट रूप देखकर मन भारी हो गया। किसी ठोस विचार को स्थापित करने की कोशिश करता, तो वह ठोस होने के बजाय और उलझता जाता। जितना स्पष्ट करता, उतना ही धुंधला होता गया।

आख़िर में सोचा कि देश की सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी कांग्रेस है, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन की नींव रखी। कांग्रेस तक आते-आते मन अस्थिर हो गया। अस्थिर होते ही यह प्रश्न उठा कि कांग्रेस की स्थापना कब हुई थी। याद आया कि गाँधीजी नस्लभेदी आंदोलन के बाद अफ्रीका से लौटे थे। 1885 ईस्वी में कांग्रेस नामक संगठन की स्थापना एक अंग्रेज़, एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम, ने की थी। हालाँकि जिस रूप में बाद में कांग्रेस के क्रियाकलाप हुए, उस रूप में उन्हें पूरी तरह ए.ओ. ह्यूम की रचना नहीं कहा जा सकता। 1952 ईस्वी में आज की भारतीय जनता पार्टी, जो पहले जनसंघ के नाम से जानी जाती थी, अस्तित्व में

आई।

अचानक मन में विश्वास हुआ कि अब जब क्रमबद्ध सूत्र मिलने लगा है, तो कहानी लिखने में कठिनाई नहीं होगी। कहानी के क्रम मन में आते ही विचार आया कि आंदोलन के दौरान कितने ही देशभक्त शहीद हुए, कितनों को काला पानी की सज़ा मिली। जेल जाने वालों की गिनती का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। साथ ही, कितने गाँव-गाँव में आग लगाई गई; अनगिनत परिवार उजड़ गए, इसका भी कोई हिसाब नहीं। अचानक मन भारी हो उठा कि भगत सिंह की फाँसी के बाद कितने देशभक्त फाँसी पर चढ़े और कितनों ने अन्य रूपों में अपने प्राण न्योछावर किए?

विचारों में फिर उलझन आने लगी। जो मन कहानी लिखने के लिए तैयार हो गया था, वह फिर से उलझनों में फँस गया।

ओझल मन से भला कहानी कैसे लिखी जा सकती है? इसी उधेड़बुन में था कि पोती, जो अभी आठ साल की है आकर बोली- “बाबा, रोटी बन गई है, खाने चलिए।”

बचपन की सहज समझ रखने वाले बच्चे को कैसे कहता कि बिटिया, अभी कुछ लिखने का सोच रहा हूँ, इसलिए अभी नहीं खा पाऊँगा। चुप ही रहा। रीता ने फिर दोहराया- “रोटी ठंडी हो जाएगी तो खाने में दिक्कत होगी न।”

रीता समझ रही थी कि बाबाजी के दाँत टूट गए हैं, इसलिए रोटी चबाने में दिक्कत होगी। इसी बीच ठकुरवारी में, यानी गाँव के राधा-कृष्ण मंदिर में, घंटियाँ बजने लगी। रोज शाम को नौ बजे ये घंटियां बजती हैं। इसी के साथ कहानी लिखने का विचार मन से हटाकर खाने के लिए उठ गया।

खाकर लौटकर बिस्तर पर लेटा तो नींद आने लगी, इसलिए कहानी लिखना छोड़कर सो गया। मन में कहानी लिखने का विचार बना तो रहा, पर लिखा नहीं जा सका।

सुबह पाँच बजे नींद तब खुली, जब गाँव के स्कूल के बच्चे स्वतंत्रता दिवस के नारे लगाते हुए सड़क पर जा रहे थे। एक तो नारों की आवाज़, दूसरे सोते समय के अपने विचार, दोनों एक साथ मन में जाग उठे। बच्चे ज़ोर-ज़ोर से

कह रहे थे- "देश की स्वतंत्रता अमर रहे"- "जीना है तो लड़ना सीखो, कदम-कदम पर मरना सीखो।"

नारों की गूँज से मेरा मन भी उद्वेलित हो उठा। बिस्तर पर लेटे-लेटे सोचने लगा कि पहले कहानी लिखूँ, फिर कुछ और करूँगा। बिना अपना नित्यकर्म किए कागज़-कलम निकालकर कहानी लिखने बैठ गया। उधर सड़क से आवाज़ आ रही थी- "गाँधी बाबा अमर रहें"- "वीर भगत सिंह अमर रहें, चंद्रशेखर, सुभाष अमर रहें।" आगे कागज़-कलम रखा था, लेकिन सड़क से आ रही नारों ने मन को इस तरह उद्वेलित और झकझोर दिया कि यह समझ ही नहीं आ रहा था कि कहानी की शुरुआत कहाँ से करूँ। धीरे-धीरे जुलूस के नारे दूर होते गए और अपने कहानी के विचार मन में आने लगे। सोचते-सोचते बात यहाँ आकर अटक गई कि देश बहुत बड़ा है और लगभग चालीस-पैंतालीस वर्षों का आंदोलन भी लंबा कालखंड रहा है, जिसमें हज़ारों देशभक्त शहीद हुए। हज़ारों को काला पानी की सज़ा मिली, लाखों जेल गए और गाँव-गाँव में आगज़नी हुई, जिससे लाखों लोग बेघर हुए। इतने बड़े परिदृश्य को एक ही कहानी में कैसे समेटा जा सकता है? मन में उधेड़बुन शुरू हो गई। अंत में विचार आया कि 1942 ईस्वी में अपने गाँव और आसपास के गाँव के देशभक्तों ने झंझारपुर सर्कल में अंग्रेज़ी शासन को समाप्त करने का जो बीड़ा उठाया था, उसी प्रसंग तक सीमित रहना उचित होगा।

1939 ईस्वी के बाद अंग्रेज़ी शासन के विरोध में तूफानी आंदोलन शुरू हो गया। जन-जन के मन में देशभक्ति की भावना जाग उठी। लोगों का व्यक्तिगत सोच उठकर देश-सेवा में विलीन हो गया। अपने इलाके के गाँव-गाँव के लोग अंग्रेज़ी शासन को तोड़ने के मार्ग में कटने-मरने को तैयार हो गए। झंझारपुर स्टेशन पर राज दरभंगा का सर्कल कार्यालय था, जो गोरा पलटन (अंग्रेज़ी फ़ोर्स) का केंद्र था। इलाके के आंदोलनकारियों ने समय निर्धारित किया। निर्धारित समय पर गाँव-गाँव से जुलूस निकले। एक तो सामान्य परिस्थितियों में भी व्यक्तिगत उत्साह प्रबल होता है, जिसमें लोग हँसते हुए अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं, और ऊपर से इलाके के लोगों का जोश पहले ही चरम पर था। गाँव-गाँव से लोग हाथ में लाठी लिए, अंग्रेज़ी शासन के विरोध

में नारे लगाते हुए झंझारपुर पहुँचे और सर्कल कार्यालय को चारों ओर से घेर लिया। अचानक अंग्रेज़ी फ़ोर्स घबरा गई, क्योंकि विशाल जुलूस के सामने मुट्ठीभर फ़ोर्स को अपनी स्थिति नगण्य लग रही थी।

जुलूस में लाठी भाँजने से लेकर अनगिनत गालियों और हुंकारों की आवाज़ें लगातार तेज़ होती जा रही थीं। अंत में सैन्य कमांडर ने फ़ोर्स को गोली चलाने का आदेश दे दिया। अनियंत्रित गोलीबारी शुरू हो गई। सैकड़ों आंदोलनकारियों को छर्रे और गोलियाँ लगीं। दीप गाँव के पुरन मंडल और पंचानन झा ने वहीं दम तोड़ दिया और शहीद हो गए। गोलियाँ लगने वाले और बिना गोली लगे आंदोलनकारी भी मैदान छोड़कर घरों की ओर लौटने लगे।

कुछ ही समय बाद अन्य कैंपों, यानी अलग-अलग स्थानों के सैन्य शिविरों से फोर्स आने लगी। गाँव-गाँव में सेना फैल गई। दीप गाँव में आग लगा दी गई। घर-घर की संपत्ति लूट ली गई। गाँव के स्त्री-पुरुष अपने-अपने मवेशियों, यानी गाय-भैंसों के साथ जो भी साथ ले जाने योग्य सामान था, लेकर दूसरे गाँव जाकर अपने परिचितों के यहाँ शरण लेने लगे।

नरसिंह मंडल को भी बाँह में गोली लगी थी। गोली बाँह में ऐसी लगी थी कि बाँह का मांस लटक गया था। रक्तस्राव लगातार हो रहा था, जिसे उन्होंने गमछे से बाँधकर रोकने की कोशिश की और बेरमा में अपनी ममेरी बहन के घर आ पहुँचे। जिस तरह दीप गाँव में सेना की गश्त चल रही थी, उसी तरह बेरमा में भी गश्त हो रही थी, लेकिन दीप की तुलना में यहाँ गश्त थोड़ी ढीली थी। गाँव के सुनार नहरनी ने नरसिंह मंडल की बाँह से गोली निकाली। दवा सब चलने के बाद वे ठीक हो गए।

14 अगस्त 1947 ईस्वी की रात बारह बजे, दिल्ली के लाल किले से मनोनीत प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश की स्वतंत्रता का पहला संबोधन दिया, जिसका आज अठहत्तरवाँ दिवस है। ❑

पूर्ण-अपूर्ण

☰

पूर्णता और अपूर्णता के बीच ही जीवन और संसार चल रहा है। आदि काल से यह धारणा बनी हुई है कि मनुष्य का जीवन अपूर्ण है और वह पूर्णता प्राप्त करने के लिए निरंतर अग्रसर रहता है। वैसे भी, संसार और जीवन निरंतर परिष्कृत होते रहे हैं और होते चले आ रहे हैं।

एम.ए. की परीक्षा देकर लौटे रंजीत गाँव पहुँचकर अपने जीवन के बारे में अकेले दरवाज़े पर बैठकर सोचने लगा कि आज का जो परिवेश बन गया है, वह पूरी तरह नौकरी केंद्रित हो गया है। अधिकतर पढ़े–लिखे नौजवान नौकरी करना चाहते हैं। कारण यह है कि समय के अनुरूप नौकरी में अच्छा वेतन मिल रहा है, जिससे परिवार का भरण–पोषण सुचारु रूप से हो रहा है और श्रम की बचत भी हो रही है। पर वह यह नहीं समझ पा रहे हैं कि जैसे ही मनुष्य श्रम से विमुख होगा, उसका प्रवाह उपभोग की दिशा में बढ़ जाएगा।

रंजीत विज्ञान का विद्यार्थी है, इसलिए जीवन के दर्शन से अधिक पदार्थ के दर्शन का उसे बोध है। पर रहता तो वह परिवार और समाज में ही है, जहाँ पारिवारिक और सामाजिक दृश्य सामने आते ही रहते हैं। वह देख रहा है कि दिन–प्रतिदिन जैसे परिवार वैसे ही समाज भी समय के साथ नहीं चल पा रहे हैं। पिछड़ते जा रहे हैं। यह स्थिति भले ही हर परिवार में न हो, लेकिन अधिकांश में तो होते ही जा रही है।

सदैव ही मनुष्य की यह धारणा रही है कि शांति से स्वयं भी रहे और माता–पिता की सेवा इस तरह करे कि उन्हें यह महसूस न हो कि परिवार में कोई

विघ्न–बाधा आ रही है। सब जानते हैं कि जवानी बीतने के बाद, यानी बुढ़ापा आते ही, अनेक प्रकार के रोग–व्याधियाँ जीवन में प्रवेश कर आती हैं। यह अलग बात है कि संसार में सबके साथ ऐसा न हो, लेकिन अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जिन्हें रोग–व्याधियाँ घेर लेती हैं।

जैसे–जैसे मनुष्य की उम्र बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे उसके शरीर के अंग भी शिथिल होने लगते हैं, और परिणामस्वरूप रोग–व्याधियों का आक्रमण बढ़ता ही जाता है। रोग भी कोई एक ही प्रकार का नहीं होता। कुछ रोग शरीर के भीतर स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं, और अधिकांश रोग ऐसे होते हैं जो बाहरी कारणों से आते हैं। बाहरी से आशय है जीवन–शैली से उपजे रोग—खान–पान, रहन–सहन—और साथ ही दुर्घटनाओं या अन्य बाहरी घटनाओं से उत्पन्न व्याधियाँ। इन सबके कारण परिवार भी आक्रांत हो उठता है। ऐसी स्थिति में बेटा–बेटी पर जिम्मेदारियाँ और भी बढ़ जाती हैं।

पहले ही जहाँ वे अगली पीढ़ी, यानी अपने बच्चों के पालन–पोषण—उनकी पढ़ाई–लिखाई, वस्त्र, भोजन आदि की पूर्ति में हलकान रहते हैं, वहीं पिछली पीढ़ी—माता–पिता या दादा–दादी यदि जीवित हों—तो उनकी सेवा करना भी कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में परिवार का उत्तरदायी व्यक्ति विवश हो ही जाता है।

रंजीत के मन में जीवन के अनेक प्रश्न उठने लगे। उसे लगने लगा कि आने वाले जीवन में वह शांति पाने का कोई सीधा रास्ता देख ही नहीं पा रहा है। अचानक उसके मन में विचार उठा कि इतने विशाल संसार में, जहाँ उसके जैसे अरबों लोग रहते हैं और जहाँ अरबों प्रकार के मन और विवेक हैं, वहाँ अनगिनत जीवन–दृष्टियाँ और अनुभव भी हैं। ऐसे में क्यों न यह समझने की कोशिश की जाए कि जब मैं स्वयं समाधान का मार्ग नहीं पा रहा हूँ तो दूसरों से पूछकर समझूँ कि मनुष्य शांति से कैसे जी सकता है।

जब रंजीत ने अपनी दृष्टि खुद से बाहर की ओर फेरी तो उसे तुरंत यह भी समझ आया कि समाज में अधिकांश लोग तो उससे भी कम पढ़े–लिखे हैं। उनसे पूछकर जीवन की दिशा कैसे मिल सकती है? तब उसे लगा कि यह अधिक

उपयोगी होगा कि वह उन व्यक्तियों से पूछे जिनके पास जीवन का अनुभव उससे कहीं अधिक है।

अपने मन के विचारों को विराम देते हुए जब रंजीत ने समाज की ओर दृष्टि डाली, तो उसकी नज़र ऐसे अनेक लोगों पर पड़ी जिनके पास उससे अधिक जीवनानुभव था और जो उससे उम्र में भी बड़े थे। तुरंत ही मन में यह प्रश्न भी उठ आया कि यदि सबके विचार एक से नहीं हों, तो किसे अच्छा मानूँ और किसे खराब? क्योंकि इस जटिल दुनिया में रास्ते अनगिनत हैं और उन पर चलने वाले लोग भी असंख्य।

लोगों के विचारों में भी फर्क है। जो बात किसी को अच्छी लगती है, वही किसी दूसरे को बुरीप्रतीत होती है और वह उससे परहेज़ करता है। जैसे—कोई व्यक्ति मछली खाने को खराबमानकर उससे बचता है, तो कोई मछली को अच्छा मानकर उसे खाता है। ऐसी स्थिति में अच्छा–बुरा कैसे तय हो?

फिर रंजीत के मन में उठने लगा कि ठीक होगा यदि वह एक नहीं, बल्कि अनेक लोगों के बीच अपने विचार रखें और उनकी बातों का मंथन–खण्डन करता हुआ अपनी राह स्वयं निर्धारित करे। अनायास ही उसके मन में यह विचार भी आया कि जैसे समाज में हम देखते हैं कि जिनका जीवन समाप्त हो गया, वे मर चुके हैं, पर उनके जीवन–दृष्टिकोण तो रहे ही होंगे। वे अब भले ही न हों, लेकिन उनके जीवन के क्रियाकलाप तो जीवित हैं, जिससे जीवन का अनुभव लिया जा सकता है।

इस बिंदु पर आकर रंजीत ने सोचा कि उचित होगा कि वह अपने से अधिक उम्र और अनुभव वाले लोगों के सामने अपने प्रश्न रखकर उनका उत्तर समझने की कोशिश करे। यह सोचकर वह दरवाज़े से उठकर शोभित बाबा के पास चल पड़ा।

शोभित बाबा जीवन की चौथी अवस्था में पहुँच चुके थे, लेकिन आज भी वे शरीर से जितने स्वस्थ हैं, उतने ही विचार से भी। परिवार बड़ा था, क्योंकि उनके दो बेटे थे, जिन्हें पढ़ा-लिखाकर उन्होंने हाई स्कूल का शिक्षक बना दिया था। दोनों बेटे—कुंजबिहारी और रघुनाथ—अब भी हाई स्कूल में कार्यरत थे।

कुंजबिहारी के तीन बेटे और तीन बेटियाँ थीं, जबकि रघुनाथ के तीन बेटे और दो बेटियाँ। इस प्रकार शोभित बाबा का परिवार काफी बड़ा हो गया था।

परिवार बड़ा होने पर भी शोभित बाबा परिवार की चिंताओं से मुक्त थे। उनके अपने जीवनानुकूल कार्य थे, जिस कार्य में वे दिन-रात लगे रहते और शांति से जीवन जीते।

जब रंजीत शोभित बाबा के दरवाज़े पर पहुँचा, तो प्रणाम करके बोला- "बाबा, आपसे कुछ समझने आया हूँ।"

समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं और पहले से भी होते आए हैं, जो अपनी योग्यता को छिपाकर यह जताते हैं कि उन्हें किसी बात का ज्ञान नहीं। शोभित बाबा ने भी वैसे ही रंजीत से कहा- "बेटा, हम भला कौन-सी बुद्धि और अक़्ल रखते हैं जो तुझे समझाएँगे। लेकिन जब दरवाज़े तक आ ही गए हो, तो तेरी बात न सुनना भी ठीक नहीं होगा। कहो।"

रंजीत ने कहा- "बाबा, पिछले महीने कॉलेज से एम.एस-सी. की परीक्षा देकर निकला हूँ। अभी परिणाम आना बाकी है। दरवाज़े पर बैठकर जब दुनिया की ओर देखा, तो लगा कि यह दुनिया इतनी उलझी हुई है कि इसे समझकर जीवन जी पाना बहुत कठिन है।"

रंजीत की बात सुनकर शोभित बाबा समझ गए कि ऐसा सोचने वाला केवल रंजीत ही नहीं है, बल्कि समाज के अधिकांश लोग इसी उलझन में फँसे हुए हैं कि दुनिया के चक्रव्यूह को कैसे समझा जाए। जैसे महाभारत के युद्ध में सब लड़ने को तैयार थे, पर चक्रव्यूह को समझने वाले कितने ही लोग थे। वैसे ही आज भी है। खैर! शोभित बाबा बोले- "बेटा रंजीत, दुनिया पूर्ण है। अर्थात, यह संसार पूर्णता से भरा हुआ है, लेकिन मनुष्य अपूर्ण है। हाँ, यदि बारीकी से देखो तो मनुष्य के भीतर जो आत्मा है, वह भी पूर्ण है। पर यह केवल उसी को अनुभव होता है, जिसके पास आत्मबोध, आत्मपरिचय होता है।"

शोभित बाबा की यह बात सुनकर रंजीत वैसे ही उलझ गया जैसे कोई अमती काँटों की झाड़ी में फँस जाए। मतलब जब काँटे कपड़े या शरीर में उलझ जाता है, तो कांटे का एक हिस्सा छुड़ाते ही दूसरा हिस्सा और कसकर उसे पकड़

लेता है। ठीक वही स्थिति रंजीत की हो गई। न तो वह शरीर और आत्मा के भेद को समझ पा रहा था, न ही दुनिया और मनुष्य के भेद को।

हताश होकर रंजीत बोला- "बाबा, ज़रा और स्पष्ट करके बता देते...!अच्छी तरह से समझ नहीं पा रहा हूँ।"

रंजीत की यह बात सुनकर शोभित बाबा के मन में भी आ गया कि ऐसा रंजीत ही नहीं, बल्कि समाज के अधिकांश लोग इस भेद को नहीं समझ पाते। तब शोभित बाबा ने कहा- "बेटा रंजीत, जब हम या तुम या कोई और, पूजा करने जाते हैं तो देवस्थान पर, यानी पूजा के स्थल पर, भगवान से माँगते तो हैं ही न—'हे भगवान, हमें अमुक वस्तु दो। अमुक कारण से हम कष्ट में हैं।'"

शोभित बाबा की व्यावहारिक बात सुनकर रंजीत बोला- "हाँ, यह तो मैं ही क्यों, सबको भगवान से माँगते देखता हूँ।"

बात तो उसने सहज ही कह दी, पर जब मन ही मन सोचने लगा तो भीतर की गहराई को पूरी तरह समझ नहीं पाया। विचार उसके मन में गुनगुनाते रहें।

इसी बीच शोभित बाबा ने उसकी उलझन सुलझाते हुए कहा- "बेटा, जब हम देवालय में जाकर हाथ जोड़कर भगवान से माँगते हैं, तो वे देंगे या नहीं देंगे, यह अलग बात है। पर मन में इतना संतोष तो हो ही जाता है कि हमने भगवान से माँगा है, तो वे अवश्य देंगे।"

शोभित बाबा की यह बात सुनकर रंजीत बोला- "हाँ, संतोष तो सबको हो ही जाता है।"

विचार को आगे बढ़ाते हुए शोभित बाबा बोले- "जिस संसार में हम सब रहते हैं, वह संसार हर चीज़ से भरा हुआ है। उदाहरण के लिए, ऑक्सीजन को ही लो। ऑक्सीजन से संसार भरा पड़ा है और उसी से क्षण-क्षण, पल-पल सृष्टि चल रही है। अब तुम ही कहो, ऑक्सीजन के अभाव में मनुष्य मरता है या नहीं? इसी तरह हज़ारों–लाखों प्रकार के फूल हैं, और फल तो हैं ही। फूल और फल ही क्यों, हज़ारों प्रकार के अन्न हैं और वे लगातार उत्पन्न भी होते रहते हैं। फिर भी लोग अन्न के अभाव में कष्ट उठाते हैं और मरते भी हैं या नहीं?"

रंजीत ध्यान से बाबा की बातें सुन रहा था और मन ही मन अपनी दृष्टि

पूरे संसार पर दौड़ा रहा था। भीतर से उसे मानना पड़ रहा था कि बाबा ठीक कह रहे हैं। फिर भी उसके मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि जब सब कुछ पर्याप्त है, तो कमी क्यों दिखाई देती है? इसी असमंजस में डूबे रंजीत ने धीरे से कहा- "बाबा, स्पष्ट नहीं कर पा रहा हूं, तनिक और...।"

शोभित बाबा बोले- "मनुष्य का अभावग्रस्त मन ही अपूर्ण है। जो कुछ उसके पास है, उस पर ध्यान नहीं रहता और जो नहीं है, उसी पर ध्यान अटका रहता है। एक आँख या एक पैर न रहने से मनुष्य बीमार हो जाता है, पर इलाज कराने के बाद स्वस्थ होता है या नहीं?"

रंजीत बोला- "हाँ, यह तो..."

उसके अधूरे वाक्य को पकड़ते हुए शोभित बाबा आगे बोले- "मनुष्य अपने शरीर के अंगों के लिए जीवन भर की कमाई लगाने को तैयार रहता है, फिर भी उसके मन की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। लेकिन आत्मा पूर्ण है, उस ओर ध्यान कोई नहीं देता। तुम भी देखते हो और मैं भी देखता हूँ कि दुनिया में जितने लोग हैं, उतने ही अलग-अलग मन हैं। अब सोचो, प्रेम करने की क्षमता भी असीम है या नहीं? ऐसे में यह अपूर्ण मन ही है जो भगवान से माँगता है, क्या नहीं?"

शोभित बाबा की बातों की धारा में रंजीत का मन वैसे ही ऊपर-नीचे डोलने लगा जैसे पानी की तेज धारा में कोई वस्तु बहते हुए हिलती-डुबकती रहती है। इसी बीच मुस्कुराते हुए शोभित बाबा ने कहा- "रंजीत, कोई भी मनुष्य बुद्धिमान बनकर इस धरती पर जन्म नहीं लेता। यहीं आकर सब सीखता है। मनुष्य के भीतर असीम बुद्धि, असीम शक्ति, असीम प्रेम—सब छिपा है, जिसे वह पहचान नहीं पाता। अंततः हर व्यक्ति को अपने शरीर की शक्ति, अपने मन की शक्ति, अपने विचारों की शक्ति का उपयोग करना ही पड़ता है। हृदय में छिपे प्रेम को उसी रूप में जगाना पड़ता है, जिससे संसार के प्रति प्रेम भाव जागृत हो सके। लेकिन,क्या ऐसा हो पा रहा है?"

रंजीत ने पूछा- "तो फिर?"

शोभित बाबा बोले- "मनुष्य का मूल 'आत्मा' है। आत्मा पूर्ण है, पर जिस

शरीर में आत्मा वास करती है, वह अपूर्ण है। इसी कारण उसमें इतनी अधिक लिप्सा है। लिप्सा ही अपूर्णता की पहचान है। जिस मनुष्य में जितनी अधिक अपूर्णता होगी, उसमें उतनी ही अधिक लिप्सा होगी।"

शोभित बाबा की बातें रंजीत वैसे नहीं समझ पा रहा था, जैसे बाबा उसे समझाना चाहते थे। इसी कारण उसके चेहरे पर उदासी का रंग गहराने लगा, जिसे शोभित बाबा बार-बार देखते और समझते रहें। मन ही मन उन्होंने सोचा—रंजीत कोई अनपढ़–अज्ञानी तो है नहीं, पढ़ा–लिखा नौजवान है। अगर ढंग से समझाया जाए तो क्यों न समझेगा, अवश्य समझेगा।

समझाने-बुझाने की कला को पकड़ते हुए शोभित बाबा बोले- "बौआ रंजीत, शारीरिक तृप्ति के लिए मनुष्य वस्तुओं की इच्छा करता है—यह वस्तु मिले तो यह सुख होगा, वह वस्तु मिले तो वह सुख होगा। लेकिन मनुष्य का सारतत्त्व मन है। यह मन ही है जो मनुष्य को पदार्थ की ओर भी खींचता है, और यही मन अपने दूसरे रूप में मनुष्य को सच्चा मनुष्य भी बनाता है। मनुष्य को मनुष्य बनाने का अर्थ है मानव को महामानव बनाना।

जब मनुष्य में भोग–लिप्सा मिटकर यश–लिप्सा जगती है, तब उसके जीवन की धारा बदल जाती है। यश से मनुष्य को भौतिक वस्तुएँ तो नहीं मिलतीं, लेकिन मन की तृप्ति और शांति मिलती है। यही जीवन की सार्थकता है, या यूँ कहो कि इससे अमृतमय जीवन प्राप्त होता है। और जब अमृतमय जीवन मिलता है, तभी अपूर्ण मनुष्य में पूर्णता आती है—यही जीवन का सार है।"

शोभित बाबा की बात सुनते ही रंजीत के चेहरे का रंग बदल गया। लालिमा से भरा चेहरा हरित–सी ताजगी में खिल उठा। मन में मुस्कान जागी और मुस्कान के मुस्कियाते रंजीत बोला- "बाबा, मन की भूख मिट गई।" शोभित बाबा ने उत्तर दिया- "बौआ, मनुष्य अपने–आप में पूर्ण है। कोई उसे पा लेता है, यानी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, और कोई कोशिश करता रहता है पर यह समझ भी नहीं पाता। यही संसार है।" ❑

कथाकार का दुर्दिन

☰

सुबह के आठ बज रहे थे। अपनी अधूरी कहानी प्रेम का रास्ता लेकर मैं मुनिधर काका के घर पहुँचा। काका दरवाजे पर अकेले बैठे, आँखें मूँदे कुछ सोच रहे थे। उनके पास पहुँचकर मैंने कहा- "काका, प्रणाम! मैं एक कहानी प्रेम का रास्ता लिख रहा हूँ। आधे से कुछ अधिक लिख चुका हूँ, लेकिन आगे क्या लिखूँ यह समझ नहीं पा रहा हूँ। आप इसको एक दफा देख लेते और बता देते कि आगे क्या लिखा जा सकता है।"

यह कहकर मैंने कॉपी उनके आगे बढ़ा दी। बिना कुछ कहे मुनिधर काका कॉपी उलट-पलट कर देख ही रहे थे कि उसी बीच अहिल्या चाची आँगन से आकर बोलीं- "दूधवाले का महीना पूरा हो गया। पूरे महीने का पैसा बकाया है, उसको पैसा देना होगा।"

पत्नी की बात सुनते ही मुनिधर काका का चेहरा फीका पड़ गया। वजह साफ थी, हाथ में पैसे नहीं थे जो वे दे पाते। पत्नी की ओर नजर उठाकर अपनी मजबूरी जताते हुए मुनिधर काका बोले- "अभी पैसे तो...।"

पति की बात सुनकर अहिल्या चाची कह उठीं- "जो बच्चा दूध न माँगे, क्या उसको समय पर माँ दूध नहीं पिलाती।"

अहिल्या चाची के इस इशारे को मुनिधर काका तुरंत समझ गए। दरअसल दूधवाले का महीना पूरा हो चुका था और उन्हें पैसे देने थे, लेकिन करें भी तो क्या। पास में पैसा होता तभी तो। अचानक काका का मन बेचैनी से भर उठा। उन्होंने कहा- "दूध लेना ही छोड़ दो।"

बोलने के क्रम में तो मुनिधर काका कह गए, पर भीतर ही भीतर उनके मन में उठा कि हम जैसे लोगों को, जिनकी आमदनी कम है, उन्हें दूध-दही खाने का साहस ही नहीं करना चाहिए। ऐसा भी तो नहीं ही है कि हम अकेले हैं। हमारे जैसे करोड़ों लोग इस देश में हैं जिनकी आर्थिक स्थिति ऐसी ही है कि वे पूरा भोजन भी नहीं जुटा पाते।

अनायास ही मुनिधर काका का मन अपने जीवन की ओर मुड़ा। जीवन की ओर सोचते ही उनके भीतर उठा कि बेवजह साहित्यिक कामों में, यानी कहानी, कविता और उपन्यास लिखने की धुन में दिन-रात लगे रहते हैं। अच्छा होगा कि इस काम, यानी लिखने का काम छोड़कर कोई दूसरा काम करें, जिससे जीवन में तंगी न रहे। हमेशा अभाव की चिंता में घिरे रहने से बेहतर है कि कोई और रोजगार किया जाए।

यकायक मन में आया कि रोजगार करने के लिए भी तो पूँजी की ज़रूरत पड़ेगी। वह कहाँ से आएगी? फिर मन में यह सवाल भी आया कि ऐसे काम भी तो हैं जिनमें पूँजी की ज़रूरत नहीं होती और आमदनी अच्छी हो जाती है। आमदनी का ख्याल आते ही मुनिधर काका मुस्कुराए और पत्नी से बोले- "सोच रहा हूँ कि भांग का कारोबार करूँ। अभी इसका बाजार भी अच्छा बन गया है। गाँव-समाज के जो नये तौर-तरीके वाले लोग हैं, वे दिन में एक बार नहीं, बल्कि तीन-तीन, चार-चार बार भोर से साँझ तक भांग खाते-पीते रहते हैं। सरकार की भी यही लीला है कि जितना शराबबंदी और नशा रोकने का भाषण करती है, कारोबार उसका उतना ही माने कई गुना बढ़ रहा है और नशा करने वालों की संख्या भी कई गुना बढ़ती ही जा रही है।"

अपने ही सुर में मुनिधर काका बोल रहे थे कि बीच में उनकी पत्नी अहिल्या चाची ने टोका- "भांग का जो कारोबार करोगे, तो लोग क्या कहेंगे?"

पत्नी की यह बात सुनकर मुनिधर काका ठिठक गए। इस बीच मैं भी वहीं बैठा उनकी बातचीत सुन रहा था। किसी भी ओर से, चाहे काका की तरफ से या चाची की तरफ से, बोलना उचित नहीं समझा और चुप ही रहा। मन में यह ख्याल जरूर आया कि शायद काका मजाक कर रहे हों। लेकिन पति-पत्नी के

बीच मजाक तो अकेले में होता है। यहाँ जब मैं भी मौजूद हूँ और बातचीत घर के जरूरी कामों पर है, तब मजाक करने का कोई कारण नहीं दिखता। इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा, बस चुपचाप काका और चाची दोनों की ओर देखता रहा।

पत्नी के मुँह से "लोग क्या कहेंगे" सुनकर मुनिधर काका मन ही मन सोचने लगे कि जिस काम के पीछे, यानी साहित्यिक काम के पीछे, दिन-रात लगे रहता हूं, उससे जीवन चलाना मुश्किल है। आखिर जीवन भी तो जीवन है, और उसमें पारिवारिक जिम्मेदारी भी शामिल है। अगर अकेले का जीवन होता तो अलग बात थी, लेकिन परिवार के साथ तो परिवार का पालन-पोषण भी जिम्मेदारी बन जाता है। जिस वृत्ति में वे अभी लगे हैं, उसमें साफ दिख रहा है कि समाज में न तो साहित्य पढ़नेवाले बचे हैं, न किताब खरीदनेवाले, और न ही साहित्य का मर्म समझनेवाले। बल्कि यह हैसियत भी नहीं है कि खुद खर्च करके किताब छपवाएँ और गाँव-गाँव घूमकर बेचें। जिन प्रकाशकों से किताबें छपवाते हैं, उनसे जब रॉयल्टी माँगते हैं, तो वही कहते हैं कि किताब की बिक्री ही नहीं है जो रॉयल्टी देंगे। किताब छपने में जो पूँजी लगी, वह भी वापस नहीं आ रही है। ऐसे में वे कहाँ से देंगे।

इसी बीच संयोग से मुनिधर काका का बड़ा बेटा रामधन भी आ गया। रामधन कॉलेज में पढ़ता है। रामधन को देखते ही अहिल्या चाची ने कहा- "बेटा, तुम्हारे पिताजी भांग की दुकान करना चाहते हैं। इस पर तुम्हारा क्या विचार है?"

नवयुवक रामधन बिना कुछ सोचे-समझे पिताजी की ओर देखते हुए बोल उठा- "बाबू, आपकी अपनी इज्जत जो भी होगी, वह तो आपके कर्म का फल होगा, लेकिन हमारी इज्जत का क्या होगा, इस पर भी ध्यान दीजिए। परीक्षा का फार्म भरने का समय आ गया है, उसी की बात कहने आया था।"

पत्नी और बेटे की बात सुनकर मुनिधर काका भीतर ही भीतर खिन्न हो रहे थे। पर उनका मन उस सीमा तक पहुँच चुका था जहाँ परिवार या समाज, हर समस्या का समाधान खोजने की प्रवृत्ति बन जाती है। इसलिए पत्नी और बेटे के मुँह से जो समस्या उन्होंने सुनी, उसे वे ऐसी समस्या नहीं मान रहे थे जिसका हल न हो सके। मन ही मन उनकी आत्मा गवाही दे रही थी कि जिस समाज के

लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है, वह समाज अपने आप में पूर्ण है। हाँ, व्यक्तिगत रूप से वे अधूरे हैं, और यही अधूरापन मन को झकझोर रहा है।

मुस्कुराते हुए उन्होंने पत्नी और बेटे से कहा- "अभी जाओ, समय पर दोनों काम पूरे हो जाएँगे। परिवार है, कोई मजाक नहीं। ऐसे ही तरह-तरह की समस्याएँ दिन-रात आती रहती हैं और जब उनका समाधान हो जाता है तो वह मिट भी जाती हैं।"

जैसे ही मुनिधर काका ने पत्नी और बेटे से कहा, वैसा ही दोनों दरवाजे से विदा हो गए। परिवार के काम से निवृत्त होने के बाद मुनिधर काका मेरी ओर मुड़कर बोले- "श्याम, मुझे लगता है कि हम पहले चाय पी लें। चाय पी लेने के बाद मन हल्का होगा, तब तुमसे आगे की बातें करने में भी मन लगेगा।"

मुनिधर काका जितने कथाकार हैं, उतने ही कवि और उपन्यासकार भी हैं। उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे सृजनकर्ता होने के साथ-साथ समीक्षक भी हैं। मैं चुपचाप बैठा काका के विचार सुन रहा था। उन्होंने पत्नी को ज़ोर से आवाज़ दी- "ज़रा चाय बना कर लाओ।"

अगर यह किसी एक दिन की बात होती तो अहिल्या चाची को पहचानने में देर लगती, लेकिन यहाँ तो जीवनभर का साथ रहा है, इसलिए पति की नस-नस से परिचित हैं। बिना कुछ कहे वह लोटे में पानी और गिलास लेकर दरवाज़े पर पहुँचीं, काका के सामने रख दिया और चाय बनाने आँगन में चली गईं।

इतने में मुनिधर काका ने मुझसे पूछा- "श्याम, कैसी कहानी लिख रहे हो?"

मैंने उत्तर दिया- "काका, लिखने से पहले विचार था कि परंपरा से चली आ रही प्रेमकथा के अनुरूप ही लिखूँ। लेकिन आगे बढ़ते-बढ़ते विचार बदल गया और मन हुआ कि कोई आध्यात्मिक कहानी लिखूँ।"

तभी अहिल्या चाची चाय लेकर पहुँचीं। चाय देखकर मुनिधर काका बोले- "पहले चाय पी लो, फिर बात करते हैं।"

हम दोनों चाय पीने लगे। चाय पीते-पीते मैं मन ही मन यह भी सोच रहा था कि पहले कहानी की भावभूमि अच्छी तरह समझ लूँ, फिर आगे लिखूँगा।

चाय पी लेने के बाद मुनिधर काका ने पूछा- “कहानी का शीर्षक क्या रखा है?”

मैंने उत्तर दिया- “कहानी का शीर्षक है प्रेम का रास्ता।”

शीर्षक सुनकर मुनिधर काका मुस्कुरा दिए, लेकिन कुछ बोले नहीं। कुछ देर बाद मनन करते हुए बोले- “श्याम, कहानी का नाम तो बहुत सुंदर रखा है।”

उनकी यह बात सुनकर मैं चुप ही रहा। मेरी चुप्पी देखकर काका आगे बोले- “श्याम, प्रेम का जो विश्व-रूप है, वह विराट है। उसी विराटता को छोटा करते हुए, यानी काट-छाँटकर, साहित्य-जगत उस सीमा तक पहुँच गया है जहाँ प्रेम का अर्थ केवल पति-पत्नी के बीच के संबंध तक सीमित कर दिया गया है।”

मुनिधर काका के मुँह से जब मैंने “प्रेम का विश्व-रूप” सुना तो अपने आप कान खड़े हो गए, पर कुछ बोला नहीं। बोलूँ भी कैसे। अनाड़ी लोग ही रंग-बिरंगे सवाल उठाते हैं, लेकिन जानकार के सामने ऐसा नहीं करना चाहिए। मैं तो मुनिधर काका को पूरी तरह जानता और पहचानता हूँ। जिस गहराई तक उनका चिंतन पहुँचता है, उतनी ही उनकी विचारशीलता भी है। वहाँ किसी नौसिखिए की तरह बेसिर-पैर की बातें करना उचित नहीं था। इसलिए चुप ही रहा।

तभी मुनिधर काका बोले- “श्याम, प्रेम अनमोल है। इसका मूल्य अथाह है। लेकिन प्रेम की जो गुफा है, यानी जहाँ प्रेम का वास है, वहाँ तक पहुँचना कठिन है। वहाँ तक पहुँचने के लिए ध्यान और साधना की जरूरत होती है। हाँ, यह भी उतना ही सच है कि जो उस गुफा तक पहुँच जाता है, यानी जहाँ प्रेम का वास है, उसकी दुनिया आनंदमय हो जाती है। उसे इस संसार में हर चीज़ आनंद ही आनंद रूप में दिखाई देने लगती है।”

मुनिधर काका का यह विचार मैं ठीक से समझ नहीं पाया। इसलिए कहा- “काका, ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ।”

मुस्कुराते हुए मुनिधर काका बोले- “महाभारत में यशोदा और कृष्ण की लीला तो जानते ही हो। कैसे यशोदा मैया ने कृष्ण को ओखली से बाँध दिया था। उसी तरह गोपी–कृष्ण लीला प्रेम की सर्वोच्च अवस्था है। खैर, इसे अभी यहीं रहने दो।”

मुनिधर काका की बात सुनकर मेरी साँस गहरी छूट गई। साँस छूटते ही भीतर जैसे कोई उजास फैल गया। जैसे भोर में सूरज निकलते ही अँधेरा मिट जाता है और दुनिया की हर चीज़ साफ दिखने लगती है, वैसा ही अनुभव हुआ। मैंने कहा- “काका, कहानी का विस्तार कितना ही हो सकता है। फिर भी आधे से अधिक मैंने लिख ही लिया है।”

मुनिधर काका बोले- “श्याम! प्रेम कहीं खोया नहीं है। वह आँख की पुतली में छिपा है। बस उसे सामने लाना होता है। जैसे ही वह सामने आता है और दुनिया की ओर देखने लगता है, तभी पूरी दुनिया प्रेममय होकर आँखों के सामने नाच उठती है। हाँ, लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिए प्रेम के रास्ते को मजबूती से पकड़ना पड़ता है।”

अनायास मेरे मुँह से हँसी निकल पड़ी। मैंने कहा- “अब चलता हूँ, काका। अगर समय मिला तो शाम को फिर आऊँगा।” ❑

मरनी

☰

छोटा-सा गाँव छतौनी। केवल तीन ही जाति के लोग यहां रहते थे। घर भी गिने-चुने, बस एक बस्ती जैसी। यह गाँव छः परिवारों के किसानों का गाँव था। हालाँकि पास-पड़ोस के लोग छतौनी को कभी प्रतिष्ठित गाँव नहीं मानते थे, क्योंकि उनके विचार से वही गाँव प्रतिष्ठित होता है जहाँ छत्तीसों जाति के लोग बसते हों, जिससे समाज की हर तरह की जरूरत गाँव में ही पूरी हो सके। पर छतौनी में ऐसा नहीं था। इसलिए वह राजस्व गाँव तो हो सकता था, पर प्रतिष्ठित गाँव नहीं।

लेकिन इस विचार को छतौनी के लोग कभी स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि जब से यह गाँव बसा है, तब से न तो यहाँ कभी आपसी झगड़ा हुआ, न मारपीट। इसलिए न किसी ने अदालत का चेहरा देखा, न थाना-पुलिस का। इतना ही नहीं, तीन जातियों के लोग रहते हुए भी सब मिलजुलकर एक साथ खाते-पीते हैं और तीनों जातियों के देवस्थानों पर पूजा-पाठ भी साथ करते हैं और प्रसाद भी मिलकर खाते हैं। सब लोग एक-दूसरे के साथ कमाते हैं और जब कभी किसी पर कठिनाई आती है तो सब साथ मिलकर मदद भी करते हैं। आस-पास के दूसरे गाँव वाले छतौनी को इसलिए गाँव नहीं मानते थे कि वे सब बाहर से आकर बसे थे, जबकि छतौनी के लोग कहते थे कि हमारे पूर्वज तो यहां आदिकाल से बसे हैं।

छतौनीवासी शुरू से ही मजदूर नहीं थे। पहले उनके अपने-अपने खेत-पथार थे। खेत-पथार कैसे गए? इस संबंध में छतौनी के बूढ़े-बुजुर्ग बताते हैं कि

हमारे पूर्वजों ने अकाल के समय खेत का लगान दरभंगा दरबार को समय पर नहीं दिया, इसी कारण उनकी जमीन नीलाम हो गई और अबधिया तथा छपरिया ने जमीन खरीद ली। हमारी जमीन का मालिकाना हक खत्म हो गया। अबधिया और छपरिया पहले राज में नौकरी करते थे, फिर इस इलाके में आकर जमीन भी हथिया लिए और मुखिया-सरपंच बनकर राजनीति करने लगे। लेकिन एक चालाकी उन्होंने जरूर की। वे अंग्रेजों की तरह नहीं आए कि सत्ता हथियाकर चले जाएँ, बल्कि मुगलों की तरह यहाँ बस गए।

जिस दिन से देश आज़ाद हुआ और सत्ता के लिए चुनाव शुरू हुए, उसी दिन से अब तक कोई भी पार्टी का नेता वोट माँगने के लिए छतौनी नहीं आया और न ही कभी गाँववालों ने वोट डाला। कारण यह कि आज तक छतौनी में मतदान केंद्र बना ही नहीं। इसलिए नेता यहाँ क्यों आते। गाँव में न तो चारपहिया गाड़ी चलने का रास्ता है, न ही कोई सार्वजनिक जगह जैसे स्कूल या अस्पताल, जहाँ भाषण-वाषण हो सके। जिस गाँव में छतौनी का बूथ बनाया जाता, उसी गाँव के लोग छतौनियों का वोट डाल देते।

छतौनी के लोगों का जीवन सीधा-सादा है। न पढ़ाई-लिखाई का झंझट, न चोरी-चकारी की चिंता और न रोग-बीमारी का डर। उनका मानना है कि जिसके भाग्य में पढ़ना लिखा है वह खुद-ब-खुद पढ़ लेगा। चोरी-चकारी करने को है ही क्या। बीमारियों के लिए पूजा-पाठ और झाड़-फूँक है। सबसे बड़ी बात यह कि जो इस धरती पर जन्मा है, वह जीएगा ही। पानी, पत्थर, बिजली उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाएँगे। और जिसका जीना तय नहीं, उसे तो फूलों के पेड़ पर बैठा साँप भी काट लेगा और वह मर जाएगा।

तो क्या छतौनी के लोगों को भगवान पर विश्वास नहीं है? विश्वास अवश्य है। यदि नहीं होता तो साल में एक बार देवस्थान पर इतनी धूमधाम से पूजा क्यों करते। उपवास क्यों रखते। हर घर में गोसाईं की पीढ़ी क्यों बनी है। और साल-दर-साल कामौर लेकर बैजनाथ क्यों जाते।

सभी अभावों के बावजूद छतौनी के लोग हँसी-खुशी जीवन बिताते हैं। यदि गाँव में किसी की मृत्यु हो जाए, साँप काट ले, या आग लग जाए, तो सभी

लोग मिलकर तन-मन-धन से लग जाते हैं।

पचास वर्ष की मरनी भी ऐसी ही घटनाओं में से एक है। जिसने अपनी आँखों से अपने पति, बेटे और बहू को पेड़ के नीचे खून से लथपथ मरते देखा। आज वह बेबस, पाँच साल के पोते और आठ साल की पोती के सहारे आशा के साथ जी रही है। काली झुर्रियों में ढँकी हड्डियों का ढाँचा, ताड़-खजूर पर बने चिड़िया के घोंसले जैसी उलझी लटें, अंगुली भर-भर की पीली दाँत, फूटी हुई मटकी की नली जैसी नाक, गाय-बैल की तरह बड़ी-बड़ी आँखें, देह पर पुरानी फटी हुई साड़ी, और कभी-कभार दूसरों की दी हुई ब्लाउज। बिना साया की आधी-फटी साड़ी ओढ़े, यही है मरनी।

चार साल पहले सुबध, मनोहर और तौनकी धान रोपने खेत गए। जब तक तौनकी को दूसरा संतान नहीं हुआ था, तब तक मरनी अपने पति और बेटे के साथ यानी सुबध और मनोहर के साथ धान रोपाई, कटाई, खेत का काम, रबी-राई उखाड़ना और काटना, सब काम में जाती थी और तौनकी आँगन का काम संभालती थी। लेकिन जब पोता-पोती हुए तब से मरनी आँगन का काम देखने लगी। आँगन में भी काम कम नहीं होता। खाना पकाना, पोता-पोती को खिलाना, खूँटे पर बंधे बछड़े की देखभाल करना, यही सब उसके हिस्से में आ गया। बाकी परिवारों की तरह मरनी का परिवार भी भरा-पूरा था।

दस आँटी धान की गठरी। तीन-तीन गठरी बीज उखाड़कर सुबध और मनोहर पटवन पर टाँगते और राड़ियों का जुन्ना बनाकर तौनकी बीज की गठरी सिर पर बाँधकर कदबा खेत पहुँचा देती। कदबा एक दिन पहले ही जुतवा लिया गया था। इसलिए तीनों को मन ही मन खुशी थी कि सुबह-सुबह रोपाई करके काम पूरा कर लेंगे। वरना बाकी दिनों में कदबे की देर से अक्सर रोपाई देर तक खिंच जाती थी। सुबध मन ही मन सोच रहा था कि मौका देखकर अपना आधा कट्ठा खेत भी मिलकर रोप देंगे।

कदबा में बीज रखकर सुबध खेत के किनारे पर बैठा और तंबाकू खाने लगा। मनोहर और तौनकी खेत में बीज फैलाने लगे। पूरा खेत बीज से पट गया और सुबध ने भी तंबाकू खा लिया। तीनों ने अपनी-अपनी गठरी खोली, धान की

जड़ें फैलाकर एक-एक बंडल हाथ में लिया। किनारे पश्चिम से तौनकी, बीच में मनोहर और पूरब से सुबध कतार में लग गए। एक पंक्ति रोपकर दूसरी में बढ़े ही थे कि पूरब दिशा में एक छोटा-सा काला बादल उठता दिखाई दिया। लेकिन टुकड़ा छोटा था, इसलिए किसी को बारिश का अंदेशा नहीं हुआ।

धीरे-धीरे हवा चलने लगी। जैसे-जैसे हवा तेज होती गई, वैसे-वैसे काले बादल का वह टुकड़ा भी ऊपर उठकर फैलता गया। ऊपर चढ़ते-चढ़ते टुकड़े आपस में मिलने लगे, लेकिन पश्चिम की ओर अभी धूप निकल रही थी। कुछ ही देर बाद सूरज ढक गया। हवा भी तेज हो गई। बिजली चमकने लगी। बूँदाबाँदी शुरू हो गई। जैसे-जैसे बादल घिरते गए वैसे-वैसे बारिश की बूँदें भी तेज होती गईं। बिजली भी लगातार चमकने लगी। थोड़ी ही देर में मूसलधार बारिश शुरू हो गई।

बारिश से भीगने के डर से तीनों लोग दौड़कर आम के पेड़ के नीचे पहुँचे। खेत से लगभग एक बीघा दूर वही आम का घना पेड़ था। खूब झमटदार, ऊपर चार हाथ की ऊँचाई पर दो शाखों में बँटा हुआ। पेड़ पर सरही आम लगे थे।

पेड़ की आड़ में पश्चिम से तौनकी बैठी और पूरब की ओर सुबध और मनोहर। तौनकी ने साड़ी ओढ़कर दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर काँख में दबा ली। लेकिन सुबध और मनोहर केवल अधनंगे शरीर में थे। उन्होंने सिर पर गमछे की पगड़ी बाँध ली, फिर भी दोनों बाप-बेटे ठंड से काँपने लगे। मोटी-मोटी बूँदें कभी-कभी उनके शरीर पर गिर जातीं तो पूरा तन काँप उठता और रोम-रोम खड़ा हो जाता। पर क्या कर सकते थे, कोई उपाय नहीं था।

पश्चिम की ओर से बादल और घिर आए और तेज़ बरसने लगे। चारों ओर बारिश ही बारिश। बीच-बीच में बादल गरजते और बिजली चमकती। अचानक एक बार बिजली इतनी जोर से कौंधी कि उसके रंग ने भी सबको चौंका दिया। बाकी बार तो सफेद चमक होती थी, लेकिन इस बार लाल सुर्ख।

खराब समय देखकर तौनकी मन ही मन खीजकर भगवान को कोसने लगी। "अभी किस काम का पानी है। जैसे ताकतवर आदमी अपनी शक्ति दिखाता है, वैसे ही यह इंद्र भगवान बेवजह तांडव मचा रहे हैं। बेवजह मेहनतकश

लोगों को ठंड से कड़ा कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि देवता-पितरों की बड़ी-बड़ी आँखें होती हैं, जो एक ही जगह बैठकर सारी दुनिया देख लेते हैं। तो वे आँखें अब कहाँ चली गईं। देवता तो गरीबों की जान लेने पर ही तुले रहते हैं। खेती करनेवालों के पास काम करने के दो ही वक्त होते हैं, सुबह और दोपहर। सुबह के वक्त यदि ग्यारह बजे तक बारिश हो जाए या कोई बाधा आ जाए तो जुताई वाला किसान थोड़े बीज बोएगा। यदि जलपान तक काम हो जाए तो अच्छा, वरना जलपान भी व्यर्थ। यही तो यहाँ की परंपरा है। यह इंद्र भगवान किसानों का साथ देने के बजाय उन्हें रोकते ही हैं।"

ठंड से काँपते हुए सुबध ने मनोहर से कहा- "बौआ, सोच रहा था कि और दिनों में रोपाई में देर हो जाती थी, जिससे अपना काम सँभालना मुश्किल हो जाता था। पर आज सोचा था कि सुबह-सुबह रोपाई निपट जाएगी तो अपनी बाड़ी भी रोप देंगे। पर सब गड़बड़ हो गया। पता नहीं यह बारिश कब थमेगी।"

दोनों बाप-बेटा बातें कर ही रहे थे कि अचानक गरज के साथ बिजली ठीक उसी पेड़ पर गिरी। जिस जगह से पेड़ की दो शाखाएँ फूटी थीं, वहीं से धरती तक दरार उतर गई। दरार ने पेड़ को दो हिस्सों में बाँट दिया। एक फाँक के नीचे तौनकी दब गई और दूसरी फाँक के नीचे दोनों बाप-बेटे, सुबध और मनोहर।

बारिश थम गई। पूरे गाँव में शोर उठने लगा कि खेत में जो आम का पेड़ था, वह गिर पड़ा है। शायद उसी पर बिजली गिरी थी।

धीरे-धीरे लोग देखने के लिए पहुँचे। किनारे खड़े-खड़े सब लोग देखते रहे। पेड़ और उसके नीचे की ज़मीन पर इतनी गहन अंधकार छाया था कि कोई पास जाने की हिम्मत नहीं करता था। लेकिन करिया हिम्मत बाँधकर जड़ की ओर बढ़ा। अंधकार बहुत गहरा था, पर उसने साहस किया और जड़ तक पहुँचा। बिजली गिरने के दाग दोनों फाँकों में वैसे ही साफ दिखाई दे रहे थे।

जड़ के पास खड़े होकर करिया इधर-उधर टटोलकर देखने लगा। अचानक उसकी नज़र मनोहर की टाँग पर पड़ी। देखते ही उसने शोर मचा दिया- "एक आदमी नीचे दबा हुआ है। जल्दी दौड़ो, आओ, इसे बाहर निकालो।"

करिया की बात सुनकर चारों ओर से लोग बढ़े। देखते-देखते तीनों पर

सबकी नज़र पड़ गई। करिया दौड़ते हुए घर की ओर गया और कुल्हाड़ी लेकर लौटा। सब मिलकर डालियाँ काटने लगे। डालियाँ हटाकर ज़मीन पलटी गई तो तीनों का शव दबा हुआ मिला। पहले तो कोई पहचान नहीं सका, क्योंकि तीनों के चेहरे और शरीर बदरंग हो गए थे। लेकिन गौर से देखने पर पता चला कि वे दोनों बाप-बेटे सुबध और मनोहर थे और उनके साथ तौनकी।

इधर तक मरनी आँगन में दोनों बच्चों के संग थी। तभी गौरिया आकर बोली- “दादी, तुम्हारे आँगनवाले सब पेड़ के नीचे दबकर मर गए।”

गौरिया की बात सुनते ही मरनी बेहोश होकर गिर पड़ी। दोनों बच्चे रोने लगे। मरनी को अचेत देख अलोधनी ने मुँह पर पानी छींटा और लोग उसे होश में लाने की कोशिश करने लगे। थोड़ी देर बाद होश आया। होश में आते ही मरनी जोर-जोर से रोने लगी।

बच्चों को गोद में लेकर अलोधनी के साथ मरनी देखने गई। पेड़ के पास पहुँचते ही जब उसने तीनों को मृत पड़ा देखा तो जोर-जोर से चिल्लाने लगी। मरनी की चीख-पुकार देखकर करिया ने उसका हाथ पकड़कर अलग किया। मरनी की दशा देखकर सब लोग दिलासा देने लगे, लेकिन उसका दिल शांत कैसे होता। अजीब स्थिति में पड़ गई थी। एक ओर परिवार का विनाश आँखों के सामने था और दूसरी ओर दोनों बच्चों का मुँह। बच्चों का चेहरा देखते ही उसके मन में थोड़ी-सी आशा जगने लगी।

चार साल पहले वाली नहीं, अब की मरनी एक बदली हुई मरनी थी, एक नई मरनी। जैसे सोना आग में तपने से पहले साधारण रहता है और तपने के बाद चमक उठता है, वैसे ही। समाज का व्यवहार भी पहले जैसा नहीं रहा, उसमें बदलाव आने लगा। कोई खाने का सामान दे जाता, कोई बच्चों और मरनी के लिए नए कपड़े। जब किसी के घर में कोई काम आता तो वे मरनी को साथ ले जाते। परिवार में जैसे बूढ़े और बच्चों के प्रति स्नेह होता है, वैसा ही स्नेह मरनी के प्रति समाज में होने लगा। जीने की आशा और बच्चों का सहारा, मरनी को नई स्फूर्ति देने लगा।

अब तक मरनी के हाथ में केवल पुराने खेती के औजार रहते थे, पर अब

वह और मजबूत हो गई। हँसिया, खुरपी, टेंगारी, कुदाल के साथ-साथ हथौड़ा और गैंती भी उसके हाथ में आ गए।

समय आगे बढ़ा। देश की विकास गति भी, बहुत तेज़ नहीं लेकिन कुछ न कुछ, पकड़ने लगी। गाँव-गाँव में बाँध, सड़क, पुल-पुलिया, स्कूल और अस्पताल बनने लगे। इससे खेतिहर और मजदूरों का काम बढ़ा। मरनी ने मिट्टी खोदना, ईंट उठाना, गिट्टी तोड़ना और सुरखी पीसना सब सीख लिया। इससे बेरोजगारी कम होने लगी। गरीब आदमी रोज कमाने और रोज खाने की स्थिति में आने लगे। भले ही जीवन में बहुत बड़ी समृद्धि न आई, लेकिन जीने की आशा जरूर जागी।

हालाँकि ये सारे काम छतौनी में नहीं थे, बल्कि आस-पास के दूसरे गाँवों में मिलते थे। उनमें छतौनी के मजदूर भी काम करने जाने लगे।

छतौनी के दिन बदलने लगे। सात किलोमीटर लंबी पक्की सड़क, जो राष्ट्रीय राजमार्ग से होकर रेलवे स्टेशन को जोड़ती थी, उसी छतौनी से होकर बननी शुरू हुई।

जिस दिन से 'प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना' छतौनी होकर बनने की चर्चा हुई, उसी दिन से गाँववालों के मन में खुशी उमड़ने लगी। गाँव के लोगों की हालत ऐसी नहीं थी कि वे बस या ट्रक खरीदने का खयाल करें। पर इतना जरूर हुआ कि बरसात में घर से बाहर निकलने की जो कठिनाई थी, वह अब नहीं रहेगी। हाँ, कुछ लोगों के मन में यह बात जरूर आई कि इतने दिनों तक बिना जूते-चप्पल के भी काम चल जाता था, पर अब वैसा नहीं होगा। पहले तो आड़ी-तिरछी मिट्टी की पगडंडी पर चलते हुए काँट-झाड़ ही पैरों में चुभते थे, लेकिन पक्की सड़क पर शीशे और लोहे के टुकड़े भी गड़ेंगे, जिससे पैरों को और अधिक चोट लगेगी। पर फिर मन में यही आता कि इतने दिनों तक कम आमदनी के कारण जूते-चप्पल नहीं खरीद पाए थे, अब तो जरूर खरीदेंगे। कम से कम एक जोड़ी तो ले ही लेंगे ताकि पैरों में फोड़े-फुंसी न हों।

प्रधानमंत्री योजना की सड़क बननी शुरू हुई। लेकिन जितनी उम्मीद मजदूरों के मन में थी, उतनी पूरी नहीं हुई। क्योंकि मिट्टी का काम शुरू होते ही

तरह-तरह की मशीनें और गाड़ियाँ पहुँचने लगीं। जो काम अब तक मजदूर करते थे, वह ट्रैक्टर करने लगे। काम की गति तेज जरूर थी, लेकिन मजदूरों की बेरोजगारी जस की तस रही। सड़क पर मिट्टी बिछाते ही रोलर आकर उसे दबाने लगे। खाने-पीने का समय छोड़कर औरतें-बच्चे, जवान-बुजुर्ग सब दिन-भर देखते ही रह जाते। बूढ़े-बुजुर्ग भी देखते, पर घर की चिंता उन्हें फिर काम की ओर खींच ले जाती।

पंद्रह दिनों में सातों किलोमीटर सड़क पर मिट्टी का काम पूरा हो गया। एकदम चिकनी, उजली, घरों से ऊँची सड़क बनकर तैयार हो गई।

मिट्टी की सड़क बनते ही बड़े-बड़े ट्रक ईंट उतारने चिमनी से आने लगे। अजीब-अजीब ट्रक थे। अब तक गाँववालों ने छह पहियों वाले ट्रक ही देखे थे, लेकिन सड़क बनते ही दस और अठारह पहियों वाले ट्रक भी उन्होंने देखे।

तीन दिनों में ही सातों किलोमीटर पर ईंटें गिरा दी गईं। लेकिन ईंट बिछाने का काम इंजन से नहीं हो सकता। वह तो आदमी ही करेगा। और उसके लिए अनुभवी, यानी एक्सपर्ट लोगों की जरूरत थी। जो छतौनी में नहीं थे। इसलिए बाहर से अनुभवी मिस्त्री बुलाए गए। वैसे भी इतना बड़ा ठेकेदार सड़क बनवा रहा था, जो एक साथ कई सड़कों का काम करवाता था। एक ही दिन इतने अनुभवी मिस्त्री ईंट बिछाने आ गए कि सबको समझ में आ गया कि दो ही दिनों में सातों किलोमीटर सड़क पर ईंटें बिछा दी जाएँगी। लेकिन ईंटें उठाने के लिए मजदूरों की जरूरत थी। पहले दिन छतौनी गाँव के मजदूरों को काम मिला। वे ईंटें उठाकर बिछाने लगे। जोर-शोर से काम चलने लगा। छतौनी के सारे मजदूर खुशी से काम करने लगे।

इसी बीच ईंटों पर बिछाने के लिए टूटी-फूटी ईंटें भी ट्रक से आने लगीं। दोहरा काम देखकर छतौनी के मजदूरों का मन और प्रसन्न हो गया। उन्हें लगा कि गिट्टी तोड़ने का काम भी अब गाँव के मजदूरों को मिलेगा। पर ठेकेदार के मुंशी ने अपने खाने-पीने के लिए सस्ते दर पर गिट्टी तोड़ने की दर तय कर दी। एक ट्रैक्टर ईंट तोड़ने के लिए केवल साठ रुपये देने पर राजी हो गया।

एक-दो दिन तो मजदूरों ने गिट्टी तोड़ने से इंकार किया, लेकिन पेट की

आग ने सबको मजबूर कर दिया। मरनी भी गिट्टी तोड़ने लगी। एक ट्रैक्टर गिट्टी तोड़ने में उसे चार दिन लग जाते, लेकिन और क्या करती। इस सड़क से पहले जो भी सड़क बनती थी, वह अधूरी ही रह जाती थी। मिट्टी का काम हो जाने के बाद एक-दो साल ईंटें जमाने में लग जाते। इससे सड़क ढह-ढह कर उबड़-खाबड़ हो जाती। बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते। साथ ही तीसरे दर्जे की ईंटें जो टूटकर धूल बन जातीं, जिन्हें गाँव के बच्चे-बूढ़े खेत-पथार में फेंक देते। औरतें भी घर की चौखट बनाने के लिए अच्छी ईंटें उठाकर ले जातीं। लेकिन इस बार ऐसा नहीं होगा। ठेकेदार को दो ही महीने में सड़क पूरा करना था। जब तक बारिश शुरू न हो, तब तक सड़क बन जानी थी।

पचास साल की मरनी, जो देखने में झुर्रियों से भरी बूढ़ी लगती। पूरा शरीर हड्डियों से झनझनाता। मुँह सूखा-सा, खैनी खाते-खाते आगे के चार दाँत टूट चुके। गेरुए और सफेद बाल हवा में उड़ते रहते। ऊपर से सड़क की धूल से रोज नहाती रहती। फिर भी उसकी आँखों में चमक बनी रहती। जब पूरब की हवा चलती तो वह पश्चिम की ओर घूमकर गिट्टी तोड़ती, और जब पश्चिम की हवा बहती तो पूरब की ओर घूम जाती। बीच-बीच में थककर थोड़ी देर आराम भी कर लेती और खैनी भी खा लेती। फिर भी मरनी का चेहरा कभी उदास नहीं होता। क्योंकि उसके हृदय में अदम्य साहस और मन में असीम विश्वास हमेशा बना रहता। इसी विश्वास से वह हरदम हँसती रहती।

सुबह का समय था, करीब नौ बज रहे थे। पूरब की ओर मुँह किए मरनी गिट्टी तोड़ने में लगी हुई थी। तभी पच्चीस-तीस वर्ष की सुगिया वहाँ आ पहुँची। सिर खुला था, बदन पर चमकदार बनारसी साड़ी, साड़ी के रंग का ही ब्लाउज, बाल घुमावदार जूड़े में बँधे थे, एड़ीदार चप्पल में मोजा लगाए हुए, मुँह में पान दबाए। हाथ में प्लास्टिक की थैली थी, जिसमें नमक का पैकेट, सरसों तेल की शीशी, मसाले की पुड़िया और साबुन रखा था।

मरनी की मेहनत और पसीना देखकर सुगिया मन-ही-मन हँसने लगी। मरनी गिट्टी तोड़ने में डूबी हुई थी, किसी ओर ध्यान ही नहीं था। सुगिया की हँसी उसके मुँह से बाहर निकलना चाहती थी, पर होंठों पर दबे पान के कारण वह रोक ली। तभी मुँह में भरे पान का पीक बाहर फेंकना जरूरी हो गया। जिस ईंट

की ढेरी पर बैठकर मरनी गिट्टी बना रही थी, उसी पर सुगिया ने पीक थूक दी। कुछ बूँदें मरनी के शरीर पर भी गिर पड़ीं। छूते ही मरनी सिहर उठी। ताज़ा पीक चमक रही थी। आँखें तरेर कर मरनी ने सुगिया की ओर देखा। सुगिया के मुँह में पान चबाते देख मरनी का खून खौल उठा। नज़र जब ईंट की ढेरी पर पड़ी तो वह पूरा थूक से सना हुआ दिखा। अब उस पर गिट्टी कैसे तोड़ी जाए। ढेरी और शरीर दोनों घिन से भर उठे। आँखें घुमाकर मरनी ने कहा- "अरे, कमिनी! तुझे सूझता नहीं कि ढेरी पर थूक फेंक रही है?"

गरीब मरनी की कड़ी बात सुनकर सुगिया तमतमा गई और बोली- "क्या तेरे कहने से मैं थूकना छोड़ दूँगी?"

सुगिया की बात दबाते हुए मरनी बोली- "इतनी ही अकड़ है तो तुझे और कहीं जगह नहीं मिली थूकने की, जो यहाँ फेंक दी?"

सुगिया बोली- "अगर यही फेंक दिया तो तू मेरा क्या कर लेगी?"

मरनी ने कहा- "क्या करूँगी। अरे निरलज्ज औरत, तुझे शर्म नहीं आती। सात पुश्तों की नाक-कान काटकर रख दी है तूने। जैसी तेरी खानदानी चाल होगी, वैसी ही तेरी करतूत भी।"

सुगिया बोली- "अपनी हालत तो देख ले।"

मरनी ने कहा- "क्या देखूँ। यह देह मेहनतकश मजदूर की है। तेरी तरह मैं कभी बमय के लौंडों से तो कभी दिल्ली के छोकरों से यारी नहीं करती। एक घूँट पानी में डूबकर मर जाऊँ, पर तेरी तरह अपमानजनक जिंदगी नहीं जी सकती। जैसे सात घरों की औरतें चिल्लाती हैं वैसे ही सात मुंशी देख रहे हैं। हमारी किस्मत सात जन्मों में भी ऐसी होगी क्या? जिसके साथ पिता ने हाथ पकड़कर सौंप दिया, उसी घर में जी-मरकर रह रही हूँ। छिछोरी कहीं की! आग लगा रखी है इस फूल जैसी देह में!"

मरनी की बात से सुगिया सहम गई। मन में डर बैठ गया कि कहीं मार ही न दे। चेहरा सिकोड़ते हुए सिर झुकाकर विदा हुई। सुगिया को जाते देख मरनी ने साड़ी के कोने से तमाकू-चूना निकालकर खाना शुरू किया। फिर भी मन स्थिर न हुआ। सिर उठाकर बार-बार सुगिया की ओर देखती और मन ही मन कहती-

“देह कैसी तनी हुई है, उधड़ी! मानो किसी राजा-महाराजा की बहू हो। हाथ-पैर में ज़रा भी मेहनत का असर नहीं, जो कमाकर खेती करे। जैसे छिछोरे लड़के होते हैं, वैसे ही छिछोरी लड़कियाँ।”

तमाकू खाकर मरनी फिर ईंट तोड़ने बैठी ही थी कि "दादी-दादी" करते हुए पोता दौड़ता आया और दोनों हाथों से दोनों कंधे पकड़कर पीठ पर लटक गया। पीछे-पीछे पोती भी आ गई। पोते को गोद में उठाकर उसने मुँह पर चूमा और पोती से बोली- “बेटी, बेटे को रोटी नहीं दी थी? तुम दोनों जाकर खा लो, मेरी गठरी में रोटी रखी है। ले जाकर खा लेना। मैं अभी काम कर रही हूँ, थोड़ी देर में आकर रसोई करूँगी।”

पोता-पोती आँगन की ओर विदा हुए। पूरब की ओर मुँह करके मरनी गिट्टी तोड़ने लगी।

चार बंदूकधारी बॉडीगार्ड के साथ सड़क का ठेकेदार उत्तर से दक्षिण की ओर सड़क का निरीक्षण करता जा रहा था। आगे-आगे ठेकेदार और पीछे-पीछे बंदूकधारी। ठेकेदार की नज़र मरनी पर पड़ी। जैसे ही नज़र पड़ी, उसके कदम धीमे होने लगे। आँखें मरनी पर अटक गईं। कदम तो आगे बढ़ते रहे लेकिन आँखों की रोशनी हृदय में उतरकर भीतर हलचल मचाने लगी। मन में जैसे आँधी-तूफान उठने लगे। सोचने लगा कि जिसकी कमाई से मेरे चार बॉडीगार्ड हैं, करोड़ों-अरबों की आमदनी है, उसकी यह दशा! वह तो मेरी ही तरह की साथी है, मेहनतकश है, कोई ऐश-मौज में डूबकर कमाए हुए धन का उपभोग करनेवाली नहीं।

लेकिन नज़र नहीं हटी। आगे बढ़ते रहे। कुछ दूर जाने के बाद जैसे मरनी की आत्मा ने आगे से रोक दिया, वैसे ही बीच सड़क पर ठेकेदार खड़ा हो गया। खड़े होकर उसने एक सिपाही से कहा- “उस गिट्टी तोड़नेवाली औरत को ज़रा बुलाकर लाओ।”

ठेकेदार की बात सुनकर एक सिपाही मरनी की ओर बढ़ा। मरनी के पास जाकर उसने कहा- “मालिक बुला रहे हैं, चलोगी?”

गिट्टी तोड़ना छोड़कर मरनी ने पलटकर सिपाही की ओर देखा। उसे देखकर मन ही मन सोचने लगी, न तो मैं किसी मुकदमे में फँसी हूँ और न ही

किसी बैंक से कर्ज लिया है, फिर यह सिपाही मुझे क्यों बुला रहा है।

मन को दृढ़ कर मरनी बोली- "तुम्हें दिखाई नहीं देता कि अभी मैं काम कर रही हूँ। जिसका मजदूरी लूँगी, उसी का काम करूँगी। अभी जाओ। काम का समय निकल जाएगा, फिर आना।"

मरनी की बात सिपाही और ठेकेदार, दोनों ने सुन ली। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और फिर नज़रें झुका लीं। ठेकेदार का मन पीपल के पत्ते की तरह डोलने लगा। कभी मरनी की ईमानदारी पर ठहरता तो कभी उसकी दशा पर। जिस देश का श्रमिक अपने श्रम पर इतना विश्वास करता है, उस देश का विकास यदि बाधित है तो कहीं न कहीं संचालनकर्ताओं में बेईमानी ज़रूर है। यह विचार आते ही ठेकेदार ने पलटकर अपनी ओर देखा तो उसका दोष उसके सामने खड़ा हो गया। सिपाही झुँझलाकर मरनी से बोला- "नहीं जाओगी तो पकड़कर ले चलूँगा।"

सिपाही की कड़ी बोली सुनकर मरनी बोली- "क्या मैंने तुमसे कोई कर्ज लिया है जो पकड़कर ले जाओगे? अपनी सुखी हड्डियों को घिसती हूँ और वही खाती हूँ।"

मरनी की बात सुनकर सिपाही का मन भी उलझने लगा। एक ओर मालिक का आदेश, दूसरी ओर मरनी के विचार। आखिर इस औरत में ऐसा दृढ़ विचार आने का कारण क्या है। दूसरों को देखता हूँ तो वे सिपाही की वर्दी देखते ही डर जाते हैं, भले ही वह असली सरकारी सिपाही न हो। पर इस बूढ़ी औरत को तो किसी बात का डर ही नहीं है। फिर मन में आया, मैं चाहे कुछ भी हूँ तो केवल एक नौकर हूँ, लेकिन यह औरत कुछ है तो एक स्वतंत्र मजदूरिन। स्वतंत्र देश की स्वतंत्र श्रमिक। जो इस देश की नींव है। आखिर देश तो इन सबका भी है। सिपाही को खड़ा देखकर ठेकेदार स्वयं पीछे हटते हुए मरनी के पास आया। सब उसे देख रहे थे और वह सबको। ठेकेदार ने अपनी नज़र मरनी की आँखों पर डाली। जैसे ही नज़र पड़ी, उसे मरनी की आँखों में सूरज की रोशनी जैसी प्रखर ज्योति दिखी। उसके ललाट से आत्मविश्वास झलक रहा था। मधुर स्वर में ठेकेदार ने पूछा- "चाची, तुम्हारे परिवार में कौन-कौन हैं?"

ठेकेदार का प्रश्न सुनते ही मरनी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसे अपने पति, बेटे और बहू की मृत्यु याद आ गई। बहते आँसू को आँचल से पोंछकर बोली- "बेटा, मेरे पति, बेटा और बहू बिजली गिरने से मर गए। मैं ही अकेली हूँ और छोटे-छोटे दो पोते-पोतियाँ हैं।"

"बच्चे स्कूल भी जाते हैं?""नहीं। एक तो गाँव में स्कूल ही नहीं है। फिर पहले गरीब आदमी के बच्चों का पेट भरेगा तब न स्कूल जाएँगे। न पेट भरने लायक अनाज है, न तन ढकने लायक कपड़े, न रहने को घर है, ऐसे में स्कूल कैसे जाएँ।"

मरनी की बात सुनकर ठेकेदार सहम गया। मन ही मन सोचने लगा कि जो आँखों के सामने देख रहा हूँ, वह झूठ कैसे हो सकता है। इतना भारी काम करनेवाली इस औरत के शरीर पर काले-मैले कपड़े हैं, उन पर भी जगह-जगह चीथड़े लटक रहे हैं, काम करने की उम्र अब नहीं है, फिर भी यह औरत इतने भारी हथौड़े से गिट्टी तोड़ रही है।

ठेकेदार का मन दहल गया। जैसे आकाश और पृथ्वी के बीच क्षितिज होता है, जहाँ जाकर चिड़ियाँ और चुनमुनियाँ लहराती हैं, वैसे ही ठेकेदार का मन सुख-दुख के बीच झूलता रहा। जैसे सब कुछ मन से खो गया हो, वैसा ही सुन्न हो गया। न आगे का रास्ता सूझा, न पीछे का। मरनी से आगे क्या पूछे, यह सोच ही नहीं पाया। साहस जुटाकर पूछा- "दिनभर में कितने रुपये कमा लेती हो?"

ठेकेदार का प्रश्न सुनकर मरनी के मन में झुरझुरी उठी। बोली- "कितना कमाऊँगी! जैसी बेईमान सरकार है, वैसा ही उसका मुंशी। चार दिन में एक ट्रैक्टर भर गिट्टी तोड़ती हूँ तो उसके बदले सिर्फ तिरासी रुपये मिलते हैं। उससे क्या तीन लोगों का पेट भर जाएगा? दिन-भर ईंट फोड़ते-फोड़ते शरीर और हाथ दर्द करते रहते हैं, पर एक गोटी भी खरीदने लायक पैसा नहीं बचता।"

ठेकेदार की आँखों में आँसू आ गए। उसके भीतर मानवता जाग उठी। पर यह मानवता जीवन में कितनी देर टिकेगी? जिंदगी तो उलटी धारा पर बह रही है। ❑

बिसाँढ़

☰

पिछले चार साल से बारिश न होने के कारण गाँव की हरियाली फीकी पड़ गई थी। जो गाँव कभी हरे-भरे पेड़ों, अन्न से लहलहाते खेतों, पानी से भरे कुओं और तालाबों, सैकड़ों रंग-बिरंगी चिड़ियों, हजारों किस्म के कीट-पतंगों, गाय-भैंसों और बकरियों से भरा-पूरा रहता था, वह अब मृतप्राय हो गया था। सुनसान श्मशान की तरह वीरान। सबके मन में एक ही विचार आता कि अब यह गाँव जीवित नहीं रहेगा। अगर रहेगा भी तो केवल मिट्टी मात्र। क्योंकि जिस गाँव में खाने को अन्न न उपजे, पीने को पानी न बचे, उस गाँव के लोग आखिर क्या हवा पीकर जियेंगे।

जिस मातृभूमि की महिमा लोग आदिकाल से गाते आए थे, वही भूमि चार साल की लगातार सूखे में पेट फाड़कर खड़ी हो गई। परंतु फिर भी लोगों की टूटती आशा के वृक्ष में नए-नए फूलों की कोंपलें अवश्य फूट रही थीं। फूटें भी क्यों न, आखिर यह जनक की भूमि मिथिला है। जिस राज्य में बारह वर्ष के अकाल का फल सीता जैसी अद्वितीय कन्या के रूप में मिला, उस राज्य में शायद एक बार फिर वैसा फल मिले। एक ओर अकाल की घातक मृत्यु-वाणी चल रही थी तो दूसरी ओर आशा का प्रज्वलित तीर भी उसका सामना कर रहा था, जिसकी चमक और गहरी थी।

ऐसी स्थिति में भी दंपत्ति डोमन और सुगिया के मन में जीने की वही आशा बनी रही, जैसी सुख के दिनों में रहती थी। कंधे पर कुदाल लिए आगे-आगे डोमन और सिर पर सिंगही मछली और बिसाँढ़ से भरी टोकरी लिए पीछे-पीछे

सुगिया, जीवन की बातें करते हुए बड़ी पोखरी से आँगन लौट रहे थे। चाँद जैसी चमकती पसीने की बूँद को दाहिने हाथ से पोंछते हुए मुस्कुराकर सुगिया बोली- "जिसे खाने-पीने का जुगाड़ करने की समझ हो, उसे क्या चिंता होगी।"

पत्नी की बात सुनकर डोमन पीछे मुड़कर सुगिया का चेहरा देखने लगा और बिना कुछ कहे नज़र झुकाकर आगे कदम बढ़ाने लगा। क्योंकि खाने की उतनी चिंता उसके मन में नहीं थी, जितनी पानी पीने की।

डोमन के पास अपना खेत-पथार नहीं था। लेकिन दोनों पति-पत्नी इतने मेहनती थे कि कुछ भी न होते हुए भी अच्छा-खासा गुज़र-बसर कर लेते थे। गृहस्थी के सभी कामों की समझ होते हुए भी डोमन किसी गृहस्थ से बँधा हुआ नहीं था। हाँ, समय-बेसमय जब अपना काम नहीं रहता तो दूसरों का काम कर देता। अपना खेत न होने से खेती तो नहीं करता था, लेकिन हर साल दस कट्ठा मड़ुआ बटाई पर अवश्य बो लेता, जिससे पाँच मन अन्न घर आ जाता।

मड़ुआ की फसल तैयार करने में बहुत मेहनत लगती है। हर दिन बीज की सिंचाई करनी पड़ती है। आरंभ में रोहैण के समय बड़ी पोखरी के किनारे डोमन बीज डाल देता। पास में पानी रहने से सिंचाई भी आसान रहती। और जमीन उपजाऊ होने के कारण बीज अच्छी तरह उगता। पंद्रह दिन में रोपाई हो जाती। मिरगिसरा में बरसात शुरू होते ही डोमन हर साल सबसे पहले मड़ुआ रोप लेता, लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। बरसात न होने के कारण बीज खेत में सूख गया। गाँव में एक धुर मड़ुआ की खेती भी नहीं हुई। इतना ही नहीं, अभी तक किसी ने धान की रोपाई के लिए खेत जोता तक नहीं, न ही बीज की क्यारियाँ तैयार कीं।

सूखे का आभास सबके मन में होने लगा। लेकिन फिर भी किसी के मन में गहरी आशंका नहीं थी, क्योंकि ढेनुवार नक्षत्र सब पीछे चल रहे थे।

जिस तरह रोहैण-मिरगिसरा यूँ ही बीत गए, वैसे ही आगे के दिन भी बेकार हो गए। समय यूँ ही बरबाद होता गया। लोग सुबह के दस बजे से पहले ही खेत से आँगन लौट आते, क्योंकि सबको लू लगने का डर रहता। मड़ुआ की खेती न हो पाने से डोमन और सुगिया के मन में चिंता बैठने लगी।

दूसरे दिन बड़ी पोखरी से दोनों पति-पत्नी पुरानी पत्तियों का बोझ सिर पर लादे आँगन लौट रहे थे। रास्ते में सुगिया बोली- "इस बार एक दाना मड़ुआ भी नहीं हुआ। बटाई से भी हर साल इतना आ जाता था कि साल भर जलपान चलता रहता था। इस बार तो जलपान भी अधूरा ही चलेगा।"

सिर पर पत्तों के बोझ से पानी टपक रहा था, जिसने डोमन और सुगिया दोनों को अधभींजा कर दिया। नाक पर टपकते पानी को पोंछते हुए डोमन ने उत्तर दिया- "कुछ अकेले हमारे साथ ही नहीं हुआ, गाँव में किसी के साथ नहीं हुआ। अगर दूसरों के पास होता और हमारे पास नहीं होता, तब दुख होता। लेकिन जब किसी के पास नहीं है तो हमें क्यों दुख होगा। जो दशा सबकी है, वही हमारी भी होगी। हमारे पास तो पुरइन-पत्तियों का काम है, और जिनके पास यह भी नहीं है?"

पति का उत्तर सुनकर सुगिया मुस्कुराते हुए बोली- "हाँ, यह तो ठीक है। लेकिन बिजली तो बिजली है, कोई अपने सिर पर हाथ रखकर थोड़े ही रोकता है। ऐसे ही यह सूखा भगवान का डंडा है। इंसान की क्या औकात!"

अब तक किसी ने समय को सूखा नहीं समझा था। सबके मन में यही होता कि यह भगवान की लीला है। किसी साल पहले से ही बरसात शुरू हो जाती तो किसी साल आखिर में। किसी साल बहुत अधिक पानी होता तो किसी साल बहुत कम और कुछ-कुछ सालों में बिल्कुल भी नहीं। जिस साल पहले ही बारिश हो जाती, उस साल गृहस्थी समय पर चलती। लेकिन जिस साल देर से बारिश होती, उस साल आधी-अधूरी खेती हो पाती।

जब हथिया नक्षत्र तक भी बरसात नहीं हुई, तब सबके मन में यह बैठ गया कि इस बार सूखा पड़ गया है। खेत चाहे जोते जाएँ या बिना जोते पड़े रहें, धूल उड़ने लगी। कहीं घास-पात का नामोनिशान नहीं। लेकिन क्या लोग हार मान लें? हरगिज़ नहीं। गाँव के लोगों में तो शुरू से ही सीना तानकर जीने की आदत रही है, फिर वे पीठ कैसे दिखाएँ।

लोग सोचते, हो सकता है इंद्र भगवान किसी कारण से नाराज़ हो गए हों, तभी ऐसा कर दिया। इसलिए उन्हें मनाना ज़रूरी है। जब वे सुधरेंगे तभी सब

काम सही होंगे। यही सोचकर कोई भूखों-प्यासों को अन्न दान करने लगा, कोई कीर्तन-अष्टयाम और नवाह कराने लगा। कोई चंडी यज्ञ, कोई विष्णु यज्ञ और कोई महादेव की पूजा कराने लगा। तरह-तरह के आयोजन शुरू हो गए। जाति-जनजाति के लोग भी कमला और कोसी नदी के नाम पर बकरा-पाठी चढ़ाने लगे। वे मानते थे कि अगर उनकी महिमा जाग उठी तो बिन बरसात भी वे बाढ़ ला सकती हैं। बाढ़ आएगी तो पोखर-तालाब से लेकर चर-चौर, गड्ढे और दलदल सब भर जाएँगे। सूखा घटेगा। आधी-अधूरी उपज फिर भी हो जाएगी।

बरसात की कमी देखकर नेंगरा काका महाजन बन बैठे। उन्हें समझ में आ गया कि इस साल का सूखा अगले साल तक असर करेगा। लेकिन सीधी-सादी बौकी चाची ने सारा चावल इकट्ठा करके रख लिया।

हाँ, बौकी चाची का भंडार छोटा था, केवल चावल का, और वह भी केवल पर्व-त्योहार तक ही चल पाता। उनकी यह महाजनी माता-नवमी से शुरू होकर पितृ-पक्ष, फिर दुर्गापूजा, कोजगरा, दीवाली, पखइया (गोवर्धन पूजा), भाई-दूज, छठ और सामा तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाती थी। क्योंकि सामा पर सबको नया चूड़ा खिलाया जाता। केवल खिलाया ही नहीं जाता बल्कि साथ में उपहार भी दिया जाता। तब तक धान की बालियाँ पक जातीं।

लेकिन इस बार बौकी चाची को यह बात समझ ही नहीं आई कि अबकी बार सूखा पड़ गया है। इसलिए अपने खाने के लिए भी कुछ अलग से नहीं रखा। जिस तरह किसान-बोनिहार सूखे से पिसे, उसी तरह बौकी चाची जैसी महाजन भी पिस गई।

अगहन आते-आते सबको चिंता घेरने लगी कि खुद क्या खाएँगे और पशुओं को क्या खिलाएँगे। क्योंकि कार्तिक तक का इंतज़ाम तो अधिकतर लोग पहले ही कर लेते थे, लेकिन इस बार नेंगरा काका को छोड़ सबका भंडार खाली हो गया। अंततः धान का बीज तक सबने कूट-छाँटकर खा लिया। अब धान की खेती की तो बात ही क्या, हालत यह थी कि रबी और राई बोना भी कठिन हो गया। अचानक सबका धैर्य टूट गया। धैर्य टूटते ही मन में चिंता समाने लगी। जैसे-जैसे समय बीतता वैसे-वैसे चिंता और गहराती जाती। एक तरफ तो चूल्हे

बंद होने लगे, ऊपर से सुरसा की तरह समय मुँह बाए सबके सामने खड़ा हो गया। चिंता से लोग बीमार पड़ने लगे। सुबह होते ही स्त्रियाँ पुरुषों को कर्मघट्टू कहने लगीं और पुरुष स्त्रियों को राक्षसी। इससे झगड़े बढ़ने लगे और घर-घर में स्त्री-पुरुषों के बीच नाच-तमाशा जैसा दृश्य बनने लगा।

लेकिन ऐसे कठिन समय में भी पति-पत्नी डोमन और सुगिया के मन में तनिक भी चिंता नहीं थी। क्योंकि उन्होंने जुड़शीतल से ही पुरइन-पत्तों का कारोबार शुरू कर दिया था। कारोबार भी अच्छा चल निकला। बावन बीघे की बड़ी पोखरी थी, जिसमें सैकड़ों पुरइन के पौधे। बाजार भी बड़े थे—निर्मली, घोघरडीहा के साथ-साथ झंझारपुर के नए और पुराने दोनों हाट। अकेली सुगिया कितना बेच पाती। पुरइन-पत्ते खरीदनेवाले हलवाई से लेकर मुरही-कचरी बेचने वाले तक थे। ऊपर से भोज और काज-कार्य में भी यह खूब बिकते। इसलिए हर आठ दिन पर वे अपनी जरूरतें पूरी कर लेते थे।

दिनभर डोमन पत्ते तोड़-तोड़कर जमा करता। एक दिन सुगिया पत्तों को गट्ठरों में बाँधती और तीसरे दिन सुबह गाड़ी से उन्हें बेचने निकल जाती। जो पत्ते बच जाते, डोमन उन्हें सुखाकर रख लेता, क्योंकि सूखे पत्तों की भी बिक्री होती थी। आज निर्मली से पत्ते बेचकर लौटते ही सुगिया ने पति से कहा- “सूखा पड़ने के कारण हमारी चलती हो गई!”

चलती शब्द सुनकर मुस्कुराते हुए डोमन ने पूछा- “वह कैसे?”

सुगिया बोली- “सभी पत्ते बेचनेवाले व्यापारी अब ठप हो गए। सारे गाँवों की पोखरियाँ सूख गईं, जिससे सबका कारोबार बंद हो गया। केवल हमारे पत्ते ही बाजार तक पहुँच रहे हैं। आज तो जैसे ही ट्रेन से उतरी, दुकानदार टूट पड़े, मानो लूट ही लिया हो। एक झटके में सब पत्ते बिक गए।"

डोमन ने कहा- “तुम्हें इतनी समझ नहीं थी कि दाम बढ़ा देतीं। एक की जगह दो हो जाता।”

सुगिया बोली- “आगे से यही करूंगी। अब तो गट्ठर भी मोटे-मोटे बाँधने पड़ेंगे न?”

डोमन बोला- “कुछ-कुछ मोटे बँधे हैं, लेकिन अब बीच-बीच में तोड़ना

पड़ेगा। इसलिए पाँच दिन और छोड़ देते हैं।”

तीसरे साल तक पहुँचते-पहुँचते गाँव की एक बड़ी पोखरी और पाँच कुओं को छोड़कर बाकी सब सूख गए। वह भी बड़ी पोखरी ही बची, क्योंकि उसमें देवताओं का अंश माना जाता था। इसलिए गाँव के सभी लोग अपने बेटे का उपनयन और विवाह वहीं जाकर स्नान कराके करते थे। वहीं छठ पूजा में अर्घ्य दिया जाता था।

हमारे इलाके की धरती की बनावट भी अजीब है। मानो मिट्टी का पहाड़। पाँच सौ फुट नीचे तक न तो पानी है और न ही पत्थर, केवल शुद्ध मिट्टी। इसी कारण न एक भी चापाकल चल पाता और न बोरिंग। पानी के लिए गाँव-गाँव के लोगों को पड़ोसियों पर निर्भर रहना पड़ता।

मवेशी सब नष्ट हो गए। सारी गाय-भैंसें या तो लोग बेच आए या सूखते पानी के कारण मर गईं। आधे से अधिक पेड़-पौधे भी सूख गए। चिड़ियाँ इलाका छोड़कर चली गईं। जो चूहे अगहन में अंग्रेजी बाजा बजाकर सात-सात शादियाँ रचाते थे, वे भी या तो बिलों में मर गए या कहीं गायब हो गए, जिनका ठिकाना ही नहीं रहा। हमारे गाँव के भी आधे से अधिक लोग भूख-प्यास के कारण मर गए। फिर भी जाँनदार लोग गाँव छोड़ने को तैयार न हुए। मर्द लोग गाँव छोड़कर परदेस कमाने चले गए, लेकिन बच्चे और औरतें गाँव में ही रह गईं।

पोखरियों और कुओं को सूखते देखकर लोगों ने बड़ी पोखरी के किनारे-किनारे कुएँ खुदवा लिए। सबने अपने-अपने कुएँ बना लिए। पानी की कोई कमी नहीं रही। तीन साल से जो सूखा आसमान की ओर से संकट बनकर आया था, वह डोमन और उसकी पत्नी के लिए सौभाग्य बन गया। काम तो पहले जैसा ही था, लेकिन आमदनी दुगुनी-तिगुनी हो गई। गाँव की जमीनों की कीमत भी घट गई। इससे डोमन ने खेत खरीदने शुरू कर दिए। हालाँकि सुगिया खेत खरीदना नहीं चाहती थी। उसके मन में डर था कि अगर इसी तरह हर साल सूखा पड़ा तो खेत बेकार पड़े रहेंगे। ऐसे में बेवजह खेत लेकर क्या करेंगे। बेहतर है घास-पानी के सहारे पशु पालें।

लेकिन डोमन के मन में आशा थी। उसे लगता था कि जैसे लँगड़ी-लूली

स्त्री भी बेटा जनकर गृहिणी बन जाती है, वैसे ही बारिश होते ही खेत भी लहलहा उठेंगे। मिथिला तो आदिकाल से योगियों और तपस्वियों की भूमि रही है। जिन्होंने अपने शरीर को जीव-जंतुओं के कल्याण के लिए न्योछावर कर दिया। क्या वे इस बात को नहीं जानते थे? अवश्य जानते थे। तभी तो गाँव में अठारह पोखरियाँ, सत्ताइस कुएँ और चौरी-चौराहों में सैकड़ों गड्ढे खोदकर पानी का भंडार तैयार कर गए थे। केवल वर्षा के भरोसे नहीं रहे, अपना भी इंतज़ाम कर गए।

तीन साल तक डोमन और उसकी पत्नी ने चैन से जीवन बिताया। लेकिन चौथे साल आते-आते बेचैनी बढ़ने लगी। गाँव की सारी पोखरियाँ और कुएँ तो पहले ही सूख चुके थे। केवल बड़ी पोखरी बची थी। उसमें भी अब केवल पाँच कट्ठे भर पानी रह गया था। सूखते हिस्सों से पुरइन के पौधे नष्ट हो गए। केवल बीच के हिस्से में ही पुरइन का झुरमुट बचा, लेकिन वहाँ भी जाँघ-भर गाद जमा थी। पानी निकालना कठिन हो गया था। पैर रखते ही जाँघ तक धँस जाते। कौन जान गँवाने की हिम्मत करता। निराशा के जंगल में डोमन और उसकी पत्नी उलझने लगे। मन में आने लगा कि जिस तरह गाँव के लोग चले गए, वैसे ही हम भी चल देंगे। जान-बूझकर अपनी जान गँवाना ठीक नहीं। अगर जीवन बचा रहा तो समय बदलेगा, साल बदलेगा और फिर लौटकर आएँगे, वरना कहीं मर ही जाएँगे। जिस तरह गाँव की हर चीज उजड़ गई, लोग उजड़ गए, वैसे ही हम भी उजड़ जाएँगे।

पति को चिंतित देखकर सुगिया ने पूछा- "कुछ हुआ क्या? ऐसे क्यों मन बुझा-बुझा सा है?"

पत्नी के प्रश्न पर डोमन ने आँखें उठाकर देखा और फिर झुका लीं। आँखें नीचे करते ही सुगिया ने दोहराकर पूछा- "क्या मन-तन ठीक नहीं है?"

नज़र उठाते हुए डोमन बोला- "तन तो खराब नहीं है, पर थोड़ा दुख देखकर मन उदास हो गया है। जिस आशा पर अब तक टिके थे, वह तो खत्म हो गई। अब आगे कोई उम्मीद नहीं दिखती। क्या करेंगे अब?"

सुगिया ने कहा- "हमारे करने से कुछ नहीं होता। जिस भगवान ने जन्म दिया है और मुँह चीर दिया है, भोजन-पानी भी वही देगा। तो फिर इतनी चिंता

क्यों करते हो?"

डोमन बोला- "सब कुछ उजड़ गया। इतना सुंदर गाँव था, वह भी समाप्त हो रहा है। केवल मिट्टी ही बची है। क्या हम मिट्टी खोद-खोदकर खाएँगे? बिना अन्न-पानी के कितने दिन खड़े रहेंगे?"

सुगिया ने समझाया- "चिंता छोड़ो। जो होना है, वही होगा। अभी तो पानी भी है और अन्न भी है। जब तक इस धरती पर हमारे लिए अन्न-पानी लिखा है, तब तक मिलता रहेगा। जिस दिन खत्म हो जाएगा, उस दिन कौन रोक पाएगा। तो इतनी चिंता क्यों करते हो?"

यह कहकर सुगिया भोजन बनाने में जुट गई। पत्नी की बात सुनकर डोमन मन-ही-मन सोचने लगा कि मुझे तो मरने का डर है, पर इसे कहाँ है। यह तो मरने के लिए भी तैयार है। फिर उसके मन में उठा कि जीवन और मृत्यु के बीच हमेशा से संघर्ष होता आया है और आगे भी होगा। उससे पीछे हटना कायरता है। जो मनुष्य कायर है, वह किस आशा में बेवजह इस धरती पर जन्म लेता है। फिर उसने अपनी ओर नज़र डाली। अपनी ओर देखते ही डोमन को लगा मानो जीने का रास्ता खो गया है, इसलिए इतनी चिंता उसे दबा रही है। उसने चूना लगाकर तंबाकू मुँह में लिया। तंबाकू मुँह में रखते ही डोमन की नज़र घोड़े की तरह माँ-बाप से लेकर अपने पुरखों की ओर दौड़ गई। पर कहीं ठहर न सकी। जाती-जाती वह मनुष्य की जड़ तक पहुँच गई। फिर उसकी नज़र घूमकर माँ पर अटक गई। उसे माँ के साथ बिताए हुए दिन याद आ गए। याद आया माँ का वह किस्सा, जब वह दस साल की उम्र में सूखा झेल चुकी थी। सूखा याद आते ही बड़ी पोखरी का बिसाँढ़ और उसमें पलने वाली अन्हई मछलियाँ डोमन की आँखों के सामने आ गईं। कुछ देर चुप रहा, फिर मन ही मन सोचने लगा। याद आया कि इसी पुरइन की जड़ों में तो बिसाँढ़ भी फलते हैं। जैसे मिट्टी के नीचे अरवी का सिर और गाठें रहती हैं, वैसे ही पुरइन की जड़ों में सिर और बिसाँढ़ होते हैं। अनजाने में उसके मुँह से निकल पड़ा- "हाय रे! बाबन बीघे की पोखरी में तो कितने ही बिसाँढ़ होंगे। उन्हें खोदने पर मछलियाँ भी मिलेंगी। खाकर तृप्त हो जाएँगे, सिंघी और मागुर की तरह।"

एक तीर से दो निशाने। यह सोचते ही डोमन के मन में खुशी उमड़ आई। पत्नी को आवाज देकर बोला- "भगवान कितने बड़े हैं। जैसे उन्होंने अरबों-खरबों जीव-जंतुओं को जन्म दिया है, वैसे ही उनके भोजन का इंतज़ाम भी किया है।"

पति की बात सुनकर सुगिया चौंक गई। जैसे कुछ समझ ही न पाई। मुँह खोले पति की ओर ताकती रह गई। पत्नी को यूँ टकटकी बाँधे देख डोमन बोला-

"चूल्हा बुझा दो। घूमकर आते हैं, तब खाना बनाएँगे।"

पति का उत्साह देखकर सुगिया के मन में शंका हुई कि कहीं इनके होश तो नहीं बिगड़ गए। अभी तो मुर्दे की तरह उदास हो रहे थे और अचानक यह क्या हो गया। पर बात को परखने की नीयत से वह कुछ बोली नहीं, चुपचाप खड़ी रही। डोमन फिर बोला- "क्या कहा मैंने! पहले आग बुझा दो, दरवाज़ा बंद कर दो और छिट्टा (टोकरी) लेकर साथ चलो।"

सुगिया ने पूछा- "कहाँ?"

"बड़ी पोखरी।"

"क्यों?"

"इतने-इतने सालों का जमा हुआ भोजन पोखरी की मिट्टी में दबा है। चलो निकाल लाएँ।"

बिना सवाल-जवाब किए सुगिया ने आग बुझाई, दरवाज़ा बंद किया और छिट्टा लेकर तैयार हो गई। घर से कोदाली निकालकर डोमन भी चल पड़ा। आगे-आगे डोमन और पीछे-पीछे सुगिया। वे दोनों बड़ी पोखरी के किनारे पहुँचे। पहुँचते ही डोमन ने हाथ के इशारे से दिखाते हुए पत्नी से कहा- "जितना पोखरी का पेट सूख गया है, उतना ही उसमें भोजन दबा पड़ा है। न खाने की कमी होगी और न पीने के पानी की। जैसे-जैसे पानी सूखेगा, वैसे-वैसे कुएँ को और गहरा करते जाएँगे। जितने पुरइन के पौधे सूख गए हैं, उनकी जड़ों में घोंसले की तरह बिसाँढ़ फल गए होंगे।"

पोखरी में उतरकर डोमन ने तीन कदम उत्तर-दक्षिण और तीन कदम पूरब-पश्चिम नापकर कोदाली से निशान किया। एक धूर जगह तय की। उत्तर-पूर्वी कोने पर कोदाली चलाई। मिट्टी इतनी सख्त थी कि कोदाली धँसी ही नहीं। दोबारा

जोर से कोदाली मारी। पर वह फिर भी नहीं धँसी। सामने की ओर देखते हुए डोमन को लगा कि शायद आगे की मिट्टी नरम होगी। खोदना आसान रहेगा। मन में खुशी उमड़ आई। आगे बढ़ते हुए बोला- "अरे देखो सुगिया, हम मर्द नहीं हैं क्या? देखो तो! यह मिट्टी हमें खोदने ही नहीं दे रही। तुम तो हमारी जीवनसंगिनी हो, तुम भी दो-चार चोट मारकर देखो।"

सुगिया हँसते हुए बोली- "पहले मेरी चूड़ी-साड़ी पहन लो और अपनी धोती मुझे दो, तब कोदाली मारकर दिखाऊँगी।"

दोनों मुस्कुराते हुए आगे बढ़े। थोड़ी दूर जाने पर मिट्टी नरम लगी। कोदाली मारकर देखा तो मिट्टी सहजर लगी। एक धूर जगह नापकर डोमन खोदने लगा। पहले ही वार में बिसाँढ़ की एक गाँठ दिखाई दी। गाँठ देखते ही वह उछल पड़ा और बोला- "अरे देखो! यही है बिसाँढ़!"

सुगिया बोली- "गाँठ देखकर क्या समझेंगे। पूरा खोदकर दिखाओ।"

पत्नी की बात सुनकर डोमन को शंका हुई कि कहीं आधे में से कट न जाए। इसलिए उसने गाँठ को हाथ से पकड़कर खींचने की कोशिश की, लेकिन वह नहीं निकला। वहां से थोड़ा सा हटकर उसने दोबारा कोदाली चलाई। कोदाली मारते ही एक बिसाँढ़ की डंडी दिखाई दी और साथ ही दो और भी। तीनों को खोदकर पति-पत्नी टकटकी लगाकर बिसाँढ़ देखने लगे।

चमकते-उज्ज्वल। ताज़े-नए। बाँस की मोटी डंडी जैसे गोल-गोल। मजबूत। हाथी के दाँत जैसे चिकने। लंबाई में एक-एक हाथ, मोटाई में एक बित्ते से हाथभर तक। वजन में पौना सेर तक।

पत्नी की ओर नज़र उठाकर डोमन को पचास साल पहले की ज़िंदगी याद आ गई। और पति की ओर नज़र उठाकर सुगिया ने चूड़ियों की मधुर झंकार और माँग में चमकता सिन्दूर देख लिया।

छिट्टा भर बिसाँढ़ और चार सेर के बराबर सिंघी-मांगुर मछली लेकर दोनों पति-पत्नी डोमन और सुगिया खुशी-खुशी लौट पड़े। ❑

बेटी का पैरुख

☰

पचहत्तर वर्षीया फुलकुमारी के शरीर में अब भी वही आर्द्रता और चमक बची हुई है, जैसे ओस से भरे किसी पात्र में हो। जितनी उम्र चढ़ी है, उतनी ही अब भी शेष जान पड़ती है।

बैसाख महीने की दोपहर, ग्यारह बजे के आसपास, घास लेकर लौटते हुए फुलकुमारी बहू के साथ सीधे आँगन न जाकर गाय के गौशाले के छाँव में जाकर बैठ गईं। छाँव के बैठते ही तन का बोझ धीरे-धीरे हल्का होने लगा और उनकी निगाहें गाय और बछड़े पर टिक गईं। देखते ही देखते ज्यों-ज्यों थकान उतरती गई, वैसे-वैसे गाय के प्रति स्नेह उमड़ता चला गया। उस स्नेह से आप्लावित होकर फुलकुमारी ने दोनों हाथ जोड़कर आठ किलो दूध देनेवाली गाय को प्रणाम किया और बहू से कहा- “छोटकी, जरा एक लोटा पानी ला।”

‘छोटकी’ यानी ‘छोटी बहू’, जिसका नाम है जलेसरी। वह निःसंतान है और विधवा भी। उम्र लगभग चालीस वर्ष। परिवार में केवल यही दो औरतें हैं, सास और बहू।

बचपन से पीहर में रहने के कारण फुलकुमारी का स्वभाव बोलचाल में खुला रहा। घर-परिवार में वे बहुओं जैसी चुप्पी साधे रहनेवाली स्त्रियों से अलग थीं। हालाँकि समाज में बेटी-जाति की राय को कम आँका जाता है, इसलिए उनकी तीखी बातों को भी हल्का ही समझा जाता। लेकिन यही हल्का आँकना उन्हें बेफिक्र बनाए रखता। न तो कोई विवाद की आशंका और न बाद में पछताने की गुंजाइश।

फुलकुमारी के दो बेटे हुए। बड़े जीबछ और छोटे राधेश्याम। जीबछ नौकरी के लिए बंबई चला गया। वहाँ कपड़े की एक फैक्ट्री में काम मिला और उस बीच ही उसका विवाह भी हो गया। शादी के दो साल बाद वह पत्नी को भी बंबई ले गया। अब जीबछ के चार संतान हैं। तीन बेटे और एक बेटी। चारों बच्चे हाई स्कूल से लेकर कॉलेज तक पढ़ाई कर रहे हैं।

बंबई जाने के बाद जीबछ चार-पाँच साल तक गाँव को भूला नहीं। हर महीने पैसे भेजता और साल-दर-साल घर आने की कोशिश भी करता। जीबछ के पीछे से राधेश्याम भी बंबई गया। उसे भी उसी फैक्ट्री में नौकरी मिल गई। लेकिन राधेश्याम को बंबई का पानी रास नहीं आया। धीरे-धीरे वह बीमार पड़ने लगा। छह महीने तक बंबई में इलाज कराया, फिर भी बीमारी कम होने के बजाय बढ़ती ही गई। सेवक के तौर पर जैसे देखभाल होनी चाहिए थी वैसी नहीं हो पाई, इससे निराश होकर राधेश्याम गाँव लौट आया। गाँव में भी न तो इलाज की ठीक व्यवस्था थी और न ही उचित आहार-व्यवहार। इसलिए कुछ ही दिनों बाद राधेश्याम की मृत्यु हो गई।

राधेश्याम का विवाह तीन वर्ष पहले ही हुआ था। संतान का मुँह देखे बिना ही वह दुनिया से चला गया। चला क्या गया, मानो समय से पहले उसे जबरन सब छोड़कर जाना पड़ा।

पति की मृत्यु के बाद जलेसरी ने मन ही मन ठान लिया कि अब वह दूसरा घर नहीं करेगी, यानी दूसरा विवाह नहीं करेगी। समाज तो समाज है, उसमें तरह-तरह की उलझनें और अपने-अपने नियम चलते ही रहते हैं। उन्हीं नियमों में एक यह भी है कि विवाह के बाद यदि पति की मृत्यु हो जाए तो पत्नी का पुनर्विवाह वर्जित है। मतलब यह कि उसे जीवन भर विधवा बनकर जीना होगा। यह नियम औरत के लिए है, लेकिन पुरुष के लिए वैसा कोई नियम नहीं है। वह चाहे तो दूसरा, तीसरा, यहाँ तक कि दर्जनों विवाह कर सकता है।

इसी तरह समाज में कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जिनमें विवाह के बाद यदि पति या पत्नी में से कोई भी मर जाए तो जीवित साथी को पुनर्विवाह का अधिकार होता है। और यह भी होता है कि जिस जाति में दोनों को पुनर्विवाह का अधिकार

है, वहाँ यदि पति या पत्नी दूसरा विवाह न करना चाहें तो भी यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। वे न करें तो भी कोई बाध्यता नहीं है। वैसे तो चोरी-छुपे का रास्ता भी दोनों तरफ चलता ही है। जिन जातियों में लड़की को दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं है, छिप-छिपाकर वहां भी होता ही है। फर्क बस इतना है कि वह काम समाज से छिपाकर करना पड़ता है। हालाँकि समाज भी उस पर से अपनी निगाह हटा लेता है और यह केवल छुपाना नहीं होता, बल्कि जैसे दबा हुआ धन धीरे-धीरे लोगों की याद से उतर जाता है, वैसे ही धीरे-धीरे सबकी स्मृति से भी मिट जाता है। फिर भी यह कहना कि नियम ढीले होकर बदल गए, सही नहीं होगा। वे आज भी जीवित हैं और कब तक बने रहेंगे, यह कोई नहीं कह सकता।

घास झाड़ना छोड़कर छोटकी पहले सास के आदेश का पालन करने के लिए उठी। कुंए पर पहुँचकर हाथ-पाँव धोए और पहले खुद भरपेट पानी पी लिया। फिर उस लोटे को, जो बैसाख की गर्मी में आँगन में रखा-रखा तप गया था, वह कुंए पर ले गई और चिकनी मिट्टी से न मलने का कारण यह हुआ कि मिट्टी का ढेर आँगन के उस पार था। छोटकी उधर न जाकर कुंए के बगल में रखे राख-भूस की ढेरी से ही एक मुट्ठी राख उठा लाई।

राख और पानी से लोटा रगड़ते ही उसका ताप धीरे-धीरे उतर गया। ताप उतरते ही भाप निकल गई। भाप के थमते ही लोटा ठंडा हो गया। ठंडा होते ही छोटकी उसमें पानी भरकर सास को देने चली। उसी क्षण शीतल लोटा जैसे मन ही मन छोटकी को आशीर्वाद दे रहा हो कि उसने मुझे फुलकुमारी तक पहुँचाकर कंचन बना दिया है, जिसमें अमृत तुल्य जल है। अमृत भी वही है जो जीवन देता है। जब मुँह से प्रवेश करता अमृत रूपी जल नाभि-कुंड तक पहुँचता है, तभी कुछ समय के लिए मन की शांति बढ़ जाती है। इस शांति से अगली क्रियाएँ सजग होकर जीवन के साथ चलने लगती हैं। यही अनुभव फुलकुमारी को हुआ।

गाय पर दृष्टि जमाए फुलकुमारी ने मन-ही-मन प्रणाम करते हुए कहा- “हे लक्ष्मी माता! आप ही ऐसी दाता हैं, जो अपने बच्चों की तरह हम दोनों सास-बहू की रक्षा करती हैं।”

गाय के लक्ष्मी रूप को देखते ही फुलकुमारी आराधना करने लगीं, अर्थात

अपने कर्तव्य और कर्म का स्मरण करने लगीं। उसी बीच छोटकी पानी से भरा लोटा लेकर पास में आकर खड़ी हो गई। लेकिन उसे फुलकुमारी देख न सकीं, क्योंकि आराधना में उनकी दृष्टि वैसे ही अटक गई थी जैसे जीवन मिल जाने के बाद मन और मस्तिष्क दोनों एक साथ किसी पर टिक जाते हैं।

फुलकुमारी की बंद आँखें देखकर छोटकी को लगा कि सासू माँ ऊँघ रही हैं। उसने स्नेह भरे स्वर में कहा- "माँ, लग रहा है आँख लग गई?"

सच तो यही है कि कुछ मिल जाने के बाद आनंद की नींद भी आ ही जाती है। निमग्न फुलकुमारी ने बहू की आवाज सुनते ही चौंककर कहा- "नहीं, ऊँघ नहीं रही हूँ बहू, गाय के रोएँ पर दृष्टि टिक गई थी।"

गाय के रोएँ देखना, यानी दुधारू होने का प्रमुख लक्षण देखना, यह बात छोटकी जानती थी। उसने कहा- "घास भी झाड़ना बाकी है।"

आशा से भरे शब्दों में फुलकुमारी बोलीं- "यहाँ लोटा रख दो और तुम चली जाओ।"

छोटकी ने वैसा ही किया।

पानी पीने के बाद फुलकुमारी की नजर फिर गाय पर जाकर टिक गई। टिकते ही मन विस्मित होने लगा। विस्मय इस बात का था कि जैसे उनकी अपनी जिंदगी है, वैसे ही गाय की भी है। फर्क बस इतना है कि धन का भंडार होते हुए भी गाय को अपनी जिंदगी की रक्षा करने की समझ नहीं है, इसलिए वह न तो अपनी रक्षा कर सकती है, न अपने बच्चे की और न ही अपने दूध का उपयोग स्वयं कर सकती है। लेकिन मनुष्य ऐसा नहीं है। वह सब कुछ कर सकता है। इसलिए यदि दोनों के बीच संबंध बना रहे तो एक-दूसरे की आशा पर जीवन सहजता से चल सकता है।

फुलकुमारी गाँव की बेटी थीं। पिता के पास दो कट्ठा घरजमीन थी। पिता सिंहेश्वर किसान थे। खेत-मजदूरी का जीवन उन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था से अपनाया और जीवन भर उसी में डटे रहे। खेती की लगभग सारी विधियाँ सिंहेश्वर को आती थीं। हल चलाना, धान रोपना, खेत में काम करना और घर बनाना, इन सब में वे निपुण थे।

सिंहेश्वर की पहली पत्नी प्रसव के समय ही मर गई और बच्चा भी माँ के साथ चल बसा। परिवार में न दूसरा कोई था न तीसरा। अकेले सिंहेश्वर ही कभी पेट के लिए मेहनत करते और कभी पत्नी की सेवा-टहल।

अपनी आँखों से सिंहेश्वर ने पत्नी और बच्चे को मरते देखा था, पर जीवन तो जीवन है, हर किसी में जीने की आशा बनी रहती है। सामाजिक नियम और टूटे हुए मन के सहारे सिंहेश्वर एक वर्ष तक रोज़ी कमाने के साथ खुद अपने हाथों से रसोई का काम भी करते रहे। लेकिन साल बीतने के बाद समाज का दबाव बढ़ा। लोगों ने समझाया- "दुनिया में अकेले तुम्हारे साथ ही यह गति नहीं हुई है, बहुतों के साथ हुई है। इसलिए जब तुम्हें जीवन मिला है तो मनुष्य की तरह परिवार बनाकर पारिवारिक जीवन जियो।"

समाज की सोच और अपनी जिंदगी की कठोरता देखकर सिंहेश्वर ने दूसरी शादी कर ली। दो साल बाद दूसरी पत्नी से फुलकुमारी का जन्म हुआ। तीन साल की उम्र में ही फुलकुमारी की माँ का देहांत हो गया।

दूसरी पत्नी की मृत्यु के बाद सिंहेश्वर ने तीसरी शादी नहीं की। समाज के लोग तरह-तरह के तर्क देकर उन्हें समझाते रहे, पर उन्होंने किसी की बात नहीं मानी।

सिंहेश्वर दो पत्नियों की मृत्यु और पहले बच्चे की मौत देख चुके थे। इन सबकी पीड़ा उनकी आँखों के सामने नाचती रहती थी। साथ ही उनके मन में यह आशा भी थी कि जब तीन वर्ष की संतान है तो वंश आगे बढ़ेगा ही। अब इसे अच्छे से पालना-पोसना है। चार-पाँच साल तक कुछ अधिक परेशानी होगी, यही सही। जब मनुष्य बनकर धरती पर जन्म लिया है तो यदि अपना बोझ खुद नहीं उठाएँगे तो जिसके भरोसे रहने की सोचेंगे उसका भी तो जीवन है, उसका भी परिवार है, उसके भी बच्चे हैं। सब अपने-अपने परिवार में व्यस्त रहते हैं। अब तो फुलकुमारी तीन वर्ष की हो गई थी। वह अब शिशु नहीं रही थी कि दिन-भर गोद में रखना पड़े या माँ का दूध पिलाना पड़े। अन्न और पानी पर भी वह जी सकती थी।

पाँच वर्ष बीतने के बाद फुलकुमारी आँगन और घर के कुछ-कुछ काम

करने लगी। आठ वर्ष की होते-होते रसोई और घर के अन्य काम सँभालने लगी। इसी बीच सिंहेश्वर भी अकेले जीवन जीने की आदत डालते-डालते उसमें निपुण हो गए।

बाल विवाह की प्रथा समाज में हमेशा से चली आ रही है। हालाँकि बाल विवाह के प्रश्न पर समाज में हमेशा मतभेद रहे हैं और आज भी हैं। बाल विवाह के समर्थन में अपना तर्क है। तर्क यह कि बेटे-बेटी का विवाह करना माता-पिता का धार्मिक कर्तव्य है। धार्मिक कर्तव्य वह माना जाता है जो जीवन से जुड़ा अनिवार्य कर्तव्य हो। अनिवार्य इसलिए कि यही वंश को आगे बढ़ाने की सीढ़ी है। पर यदि माता-पिता बेटे-बेटी को बीस-पच्चीस वर्ष का जवान बनाने तक प्रतीक्षा करना चाहें और बीच में ही उनका निधन हो जाए तो जीवन का यह कर्तव्य अधूरा रह जाएगा। यदि यह अधूरा रह गया तो माता-पिता अधर्मी माने जाएँगे। जब मन में अधर्म का विचार बैठ जाएगा तो नरक का भागी होना निश्चित है। वैसे भी कोई नरक नहीं जाना चाहता। लेकिन यदि कोई धोखे-धड़ी में चला जाए और कोई जान-बूझकर जाए तो दोनों में फर्क होता है। जान-बूझकर नरक जाना कहीं अधिक कष्टकर है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपने मन से ऐसा विचार चाहता।

समाज की बँधी प्रथा और अपने परिवार की आँखों से देखी परिस्थितियों ने सिंहेश्वर को बाँधे रखा। इसलिए उन्होंने सात वर्ष की आयु में ही बेटी फुलकुमारी का विवाह कर दिया।

आज ही नहीं, पहले भी लोग परदेस में काम करते थे। कलकत्ता के पटुआ कारखाने में लड़के का पिता नौकरी करता था और बच्चे व पत्नी गाँव में रहते थे। ऐसे परिवार को परदेशी परिवार नहीं कहा जाता था। यही कारण था कि अंदर-बाहर के विचारों का टकराव न होने से सिंहेश्वर की कुटुंब-रीति, अर्थात उनकी बेटी का विवाह, उसी परिवार में हुआ।

समाज के कुछ विचारवान लोगों का मत स्पष्ट था कि ग्रामीण परिवेश और शहरी परिवेश की जिंदगी में हर मामले में अंतर होता ही है और उससे कभी-न-कभी जीवन में व्यवधान आना स्वाभाविक है।

हालाँकि अन्य कारण चाहे लड़के के पिता की ओर से रहे हों, पर मूल कारण यही था कि बारह घंटे चटकन में काम करने के बाद पाँच-सात जनों का परिवार शहर में चलाना कठिन हो जाता। लेकिन गाँव तो गाँव है, वहाँ लोग नोनिया-साग खाकर भी सौ साल की जिंदगी हँसते-खेलते गुजार लेते हैं। फिर भी, कलकत्ता का परिवार तो दूल्हा पक्ष था, इसलिए आगे-पीछे कुछ न कुछ जानते-समझते ही थे।

फाल्गुन के शुरुआत में लड़के के पिता मोतीलाल गाँव आए। सिंहेश्वर की पिसियौत बहन उसी गाँव में रहती थी, इसलिए उसकी अगुवाई में विवाह की बातचीत शुरू हुई। बहन को घटक या शादी-विवाह की दलाल तो नहीं कहा जा सकता, पर वह घटकैती की राह की राहगीर थी। और ऐसी राहगीर, जो राह बनाने में सहयोग करती है। वैसे भी ऐसे सूत्र धागे की तरह गाँव-गाँव में फैले रहते हैं और रिश्तेदारी की बातें इन्हीं से सक्रिय होती हैं।

फुलकुमारी का विवाह नौ वर्ष के विनाश के साथ तय हुआ। शरारती स्वभाव का विनाश गाँव के स्कूल में पढ़ता था, इसलिए नाम-गाँव से लेकर परगना तक में जाना-पहचाना था। सिंहेश्वर मन में यह सोचकर बेटी का विवाह ऐसे लड़के से करना चाहते थे, जिसका काम-धंधा निश्चित हो। पाँच जनों के साथ सिंहेश्वर लड़का देखने और अंतिम निर्णय के दिन मोतीलाल के घर पहुँचे। अब तक पिसियौत बहन के माध्यम से बातचीत चलती रही थी, जिसमें सहमति की झलक पहले ही मिल चुकी थी।

गाँव के उस घर के बच्चे जिनकी पारिवारिक आमदनी कम होती है, उनकी जिंदगी भी उसी अनुरूप होती है, यानी उनके बोलचाल और रहन-सहन में अभाव झलकता है। इसके ऊपर से जब परिवार कलकत्ता से जुड़ा हुआ हो तो मन से सिंहेश्वर ने मान ही लिया। हालाँकि पहले यह प्रश्न उठ चुका था कि यदि लड़के ने अपना नाम-गाँव लिखाया होता तो रिश्तेदारी क्यों नहीं ली गई।

बैठक में पिता से कहा गया कि लड़के का नाम-गाँव लिखवाएँ, तो विनाश का नाम लिखाया गया। इस पर लड़के की पीठ ठोकते हुए उसके पिता ने सबके सामने यह आश्वासन भी दिया- “विवाह के बाद लड़के को कलकत्ता ले जाएँगे।

वहीं पढ़ाएँगे-लिखाएँगे और चटकन में काम भी सिखाएँगे।”

भावुक सिंहेश्वर ने आश्वासन देते हुए कहा- “बैशाख में काम निपटा लेंगे।”

लेकिन मोतीलाल की गिद्ध-दृष्टि सिंहेश्वर की डेढ़ कट्ठा घरजमीन पर अटकी थी, जिसे वे खुलकर नहीं कहते थे। कारण यह भी था कि चार भाइयों की साझेदारी में केवल सत्रह धूर जमीन अपनी थी, जिससे अगली पीढ़ी के लिए घर बनाने तक की गुंजाइश कठिन हो रही थी। उस समय ऐसा अवसर नहीं आया था कि कलकत्ता में बसने की चर्चा मन में उठती। इसलिए सौ प्रतिशत गाँव में रहने की आशा मन में बनी रहती। हालाँकि कभी-कभी, खासकर जाड़े के महीनों में जब चटकन से थके-माँदे पटुआ के गट्ठर ढोते मजदूर शाम को लौटते और नहाने का समय होता, तब मन में गुस्सा जरूर उठता कि जिस गाँव में बसने का इतना बड़ा अधिकार तो है, लेकिन अभी नहीं। अभी तो बस यही कि रहने के लिए जमीन चाहिए, और जब घर की जमीन ही नहीं है तो गाँव में रहना कैसे संभव है।

गुस्सा उठने के बाद मोतीलाल के मन में यह ख्याल भी आता कि जिस भोजन को खा नहीं सकते, उसी में विष डले, और जिस गाँव में बसने के लिए खेत नहीं है, वहाँ सुबह-शाम कुत्ते ही भौंके। लेकिन मजबूर मन के बेबस विचार आखिर कर ही क्या सकते हैं। दुनिया तो बहुत बड़ी है, कर्ता भी उतना बड़ा होना चाहिए। समझने की बात है कि यदि कमी होगी तो वह गरीब को ही सताएगी, जो दिन-भर कुदाल से मिट्टी खोदता है..!

बैसाख महीने में फुलकुमारी का विवाह हुआ। हालाँकि गाँव-घर में, विशेषकर जहाँ फूस की छत वाले घर होते हैं, बैसाख का लगन खतरनाक माना जाता है। कब आँधी उठ जाए और रसोई की आग से घर जल जाए, इसका कोई भरोसा नहीं। लेकिन फुलकुमारी के विवाह में ऐसा कुछ नहीं हुआ। तीन दिन पहले ऐसी मूसलधार वर्षा हुई थी कि लगन का दिन फाल्गुन से भी अधिक सुहावना बन गया।

शहरी वातावरण और पढ़ाई-लिखाई की सुविधा के कारण मोतीलाल ने

अपने बेटे को मैट्रिक तक पढ़ा दिया। थोड़ा-बहुत अपना काम भी उसे दिखाकर सिखा दिया था। इसलिए उनके मन में यह आशा बनी रहती थी कि जब वे खुद चटकन के भरोसेमंद मजदूर हैं तो मालिक उनके बेटे को भी तो कोई न कोई काम देंगे ही। पर मन में यह खरोंच भी उठती रहती थी कि वे खुद अनपढ़ होकर मजदूरी कर रहे हैं यह तो ठीक है, पर बेटा तो मैट्रिक पास पढ़ा-लिखा है, उसे क्यों न दफ्तर में किसी बाबू का काम मिले।

सोच तो मोतीलाल की अनुकूल ही रहती थी, पर यह बात उनके मन में कभी नहीं उठी कि जैसे मजदूरों के बेटे-बेटियाँ भँट्ठे के धुएँ में पनपते हैं, वैसे ही यदि कारखाना भी पनपे तो ठीक है, पर यदि वह न फूले-फले तो उनके मन सपनों की तरह झूठे साबित होंगे या नहीं।

मोतीलाल के मन को पेंशन की व्यवस्था भी तसल्ली देती थी। उन्हें विश्वास था कि सेवा-निवृत्ति के बाद यदि बेटा खाने-पीने की व्यवस्था न भी करे तो भी पति-पत्नी दोनों आराम से जीवन काट लेंगे। वैसे भी साठ वर्ष की आयु में ही तो सेवानिवृत्त होना था। पर यह बात मोतीलाल समझ ही नहीं पाए कि सेवा-निवृत्ति के बाद आधी जिंदगी और जीनी पड़ती है, और उसके लिए भी शरीर को बचाए रखने की जरूरत होती है। लेकिन भट्ठे का धुआँ धीरे-धीरे फेफड़ों में जमता जा रहा था। दवाइयों के सहारे कब तक जी पाएँगे, यह वे बेचारे समझ ही नहीं पाए।

पचास वर्ष की अवस्था में ही मोतीलाल की मृत्यु हो गई और वे पेंशन से वंचित रह गए। उस समय यह व्यवस्था भी नहीं थी कि अनुकंपा पर परिवार के किसी अन्य सदस्य को नौकरी मिल जाए। फिर भी राहत इस बात की थी कि उनकी पत्नी, अपने आप को खुद सँभाले हुए थीं। विनाश ने भी हल्का-फुल्का काम शुरू कर लिया था, जिससे पिता की मृत्यु के बाद भी वह कलकत्ता में ही रह सका।

मोतीलाल की मृत्यु के एक वर्ष बाद विनाश का दुरागमन हुआ। ससुराल की पारिवारिक स्थिति देखकर विनाश ने अपने ही खर्च पर दुरागमन कराया। दुरागमन के बाद फुलकुमारी ससुराल गईं, पर वह भी सिर्फ सात दिन के लिए।

सात दिन बाद फुलकुमारी अपने पैतृक गाँव लौट आईं। विनाश फिर कलकत्ता चला गया। केवल विनाश की माँ, यानी फुलकुमारी की सास, अपने गाँव ही रहीं।

विनाश साल में एक माह की छुट्टी पर गाँव आता। उसमें भी दो-चार दिन अपने पैतृक गाँव में और बाकी का समय ससुराल में बिताता। परिवार की जटिलताओं के कारण दो वर्ष बाद विनाश ने अपने गाँव की जमीन रिश्तेदारों के हाथ बेच दी और अपनी माँ को भी ससुराल ले आया। फुलकुमारी और विनाश के दो बेटे हुए। दोनों का नाम गाँव के स्कूल में लिखवा दिया गया। दो साल बाद विनाश की माँ का भी निधन हो गया और उनकी क्रिया-कर्म से लेकर श्राद्ध तक का सारा काम विनाश ने ससुराल में ही किया।

बावन वर्ष की आयु में विनाश को दमा की बीमारी ने जकड़ लिया। एक तरफ कलकत्ता का दमघोंटू वातावरण, दूसरी तरफ दमा, बीमारी बढ़ती ही चली गई। अंततः चटकन के मालिक ने एक महीने की तनख्वाह के अतिरिक्त तीन हजार रुपये और पेंतीस सेर धान देकर विनाश को तब तक छुट्टी पर भेज दिया जब तक कि वह रोगमुक्त न हो जाए।

विनाश की बीमारी गहराती गई, जिससे उसने कलकत्ता छोड़कर गाँव में इलाज कराना शुरू किया और आमदनी के लिए एक छोटी दुकान खोल ली। पर दुकान चला न सके। कारण यह रहा कि एक तो वह शहरी वातावरण का आदी था, दूसरा उसे व्यापार करना आता ही नहीं था। हालाँकि वह मैट्रिक पास था, इसलिए उसके मन में ख्याल आया कि भले कलकत्ता जितनी कमाई न हो, पर ट्यूशन पढ़ाकर तो कुछ कमा ही सकता है।

दुकान के साथ-साथ विनाश आठ-दस बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाने लगा। वही उसकी आमदनी का आधार रहा, जिसमें दवा और खानपान का खर्च भी मुश्किल से पूरा होता था। पर फुलकुमारी मेहनती रही। उन्होंने एक अच्छी गाय पाल रखी थी और घर की बची हुई दो कट्ठा बाड़ी में इतनी सब्जियाँ उगा लेती थीं कि खाने-पीने के साथ थोड़ा-बहुत आमदनी भी हो जाता था। इससे गुज़ारे में अधिक कठिनाई नहीं होती थी।

गाँव में रहने के चार साल बाद विनाश का निधन हो गया। फुलकुमारी को

ससुराल का वह सुख कभी नहीं मिला जो परिवार और समाज से जुड़कर मिलता है। कभी किसी ने उन्हें भाभी, चाची या दादी कहकर नहीं पुकारा। ये संबोधन तो ससुराल में बसनेवालियों को मिलते हैं, पर फुलकुमारी ने वहाँ रहना ही नहीं पाया। हाँ, परिवार और समाज में वे हमेशा बहिन या दीदी बनी रहीं।

जिस तरह जीवन को पहचाननेवाला मनुष्य श्रम को पहचानकर अपने को श्रमशील जीवन में खड़ा करना सीखता है और फिर चलने-चलते दौड़ने लगता है, उसी तरह फुलकुमारी भी अपने जीवन-श्रम को पहचानकर तभी से दौड़ने लगीं, जब उनके पति का निधन हुआ, एक बेटा चल बसा और दूसरा बेटा अपने परिवार को लेकर बंबई चला गया।

फुलकुमारी का परिवार आज भी उतना ही अधूरा है जितना पिछली पीढ़ी में था। जैसे विनाश अपने भाइयों में अकेला था, वैसे ही फुलकुमारी भी अकेली रहीं। आज भले ही फुलकुमारी अपनी विधवा बहू के साथ अकेली रह रही हैं, पर पूर्वजों की घरजमीन पर तो जमी हुई हैं। बेटे का परिवार भले बंबई में बस गया हो, पर चार पोते-पोतियों की दादी और बेटे-बहू की माँ तो वही हैं। ❑

❑❑❑
❑❑
❑

Notes